कहा कहूं उस देस की
(ओशो द्वारा दिए गए छह अमृत प्रवचनों का संकलन)

अनुक्रम

1. आध्यात्मिक साम्यवाद..2
2. अनुभूति और अभिव्यक्ति...17
3. असुरक्षा--प्रवाह--स्वीकार...38
4. दर्शन--ज्ञान--चरित्र...66
5. प्रार्थना क्या है...71
6. धर्म और क्रांति...77

कहा कहूं उस देस की
पहला प्रवचन

आध्यात्मिक साम्यवाद

चार दिनों की चर्चाओं के संबंध में बहुत सारे प्रश्न इकट्ठे हो गए हैं। आज ज्यादा से ज्यादा प्रश्नों पर चर्चा कर सकूं ऐसी कोशिश करूंगा। और इसलिए बहुत थोड़े में उत्तर देना चाहूंगा।

एक मित्र ने पूछा हैः क्या आप प्रच्छन्न साम्यवादी हैं?

प्रच्छन्न होने की कोई जरूरत नहीं है, मैं स्पष्ट ही साम्यवादी हूं। किसने कहा कि प्रच्छन्न साम्यवादी हूं? मेरी दृष्टि में जो भी आदमी धार्मिक है वह साम्यवादी हुए बिना नहीं रह सकता। सिर्फ अधार्मिक आदमी साम्यवादी हुए बिना रह सकता है। जिस व्यक्ति को भी यह ख्याल है कि सबके भीतर एक ही परमात्मा का वास है, वह यह मानने को राजी नहीं हो सकता कि समाज में अर्थ की इतनी असमानताएं हों, इतनी गरीबी, इतनी अमीरी, इतने फासले हों। वह यह भी मानने को राजी नहीं हो सकता कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को विकास का समान अवसर न मिल सके।
साम्यवाद का एक ही अर्थ है कि हम प्रत्येक मनुष्य को बराबर मूल्य देना चाहते हैं और उसके जीवन की जो छुपी संभावनाएं हैं, उनके विकास का बराबर अवसर देना चाहते हैं। बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट और लाओत्सु, उन्होंने कभी साम्यवादी शब्द सुना भी नहीं होगा, लेकिन मेरी दृष्टि में वे सभी कम्युनिस्ट थे।
दुनिया का कोई भी अच्छा आदमी कभी भी कम्युनिस्ट न रहा हो, ऐसा होना मुश्किल है, असंभव। उन सबके मन में एक ही कामना है कि सारी मनुष्यता समान तल पर कैसे पहुंच सके। उन्होंने आत्मा की समानता की घोषणा की कि एक-एक व्यक्ति के भीतर बराबर समान स्तर की, समान मूल्य की आत्मा है, समान मूल्य का परमात्मा है। लेकिन वह घोषणा व्यर्थ चली गई। क्योंकि जब तक आर्थिक परिस्थितियां समान न हों, आत्मा की समानता को तय करना बहुत मुश्किल है। और जब तक बाहर भी समानता की सुविधा न हो, भीतर की समानता सिर्फ शब्द रह जाती है।
क्राइस्ट और बुद्ध और महावीर और लाओत्सु हार गए चिल्ला कर, क्योंकि बाहर की परिस्थितियां बिल्कुल ही असाम्यवादी हैं, असमानता की हैं, तो भीतर की समानता की बात सिर्फ शास्त्रों में रह जाती है।
मुझे लगता है कि आने वाली दुनिया में हम बाहर के जीवन की सारी असमानताओं को मिटा सकेंगे, और तभी पृथ्वी पर पहली बार ठीक धार्मिक संसार का निर्माण होगा, उसके पहले नहीं। जब तक समता स्थापित नहीं होती तब तक भीतर के समान परमात्मा का अनुभव भी बहुत मुश्किल है। और यह भी मेरी दृष्टि है कि जब तक गरीबी नहीं मिटती तब तक गरीब आदमी परमात्मा की तरफ वस्तुतः उत्सुकभी नहीं हो सकता है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि उनके कोई मित्र गरीब हैं, वे भी ईश्वर को पाना चाहते हैं। लेकिन रोटी-रोजी की तकलीफ में ही पड़े रहते हैं। क्या वे भी ईश्वर को पा सकते हैं?

यह सवाल ही कितना दुखद है और कितना पीड़ादायी है। एक आदमी ईश्वर को पाना चाहे, लेकिन रोटी-रोजी कमाने में ही जीवन गंवा देना पड़े, और फिर भी वह न मिल पाए। ऐसा हमने कुरूप, ऐसा हमने अजीब सा समाज निर्मित किया है कि कोई ईश्वर की खोज भी करने चला जाए, जाना चाहे, तो रोटी जैसी छोटी चीज बाधा बन जाए।
निश्चित ही रोटी बाधा बन सकती है। जीसस ने कहा हैः मैन कैन नॉट लिव बाइ ब्रेड अलोन। आदमी अकेली रोटी पर नहीं रह सकता। इसके साथ एक बात और जोड़ देनी जरूरी है कि आदमी रोटी के बिना भी नहीं जी सकता है। अकेली रोटी भी

काफी नहीं है। रोटी मिलते ही और आवश्यकताएं शुरू हो जाती हैं। लेकिन अगर रोटी न मिले, तो सब आवश्यकताएं समाप्त हो जाती हैं और आदमी को बिल्कुल शरीर के तल पर जीना पड़ता है।
गरीब आदमी का सबसे बड़ा दुख है कि वह शरीर के तल के अतिरिक्त और कहीं जीने का रास्ता नहीं पाता। गरीब आदमी की सबसे बड़ी मजबूरी है कि उसे शरीर के आस-पास ही जीना पड़ता है। क्योंकि जहां जरूरत है--अगर पैर में कांटा गड़ा है, तो सारी आत्मा पैर के कांटे के पास ही इकट्ठी हो जाती है। सारी चेतना, सारी कांशसनेस पैर के कांटे में उलझ जाती है। सारा शरीर भूल जाता है, बस वह कांटा ही दृष्टि में और ध्यान में रह जाता है। उस समय कांटा ही परमात्मा हो जाता है।
गरीब आदमी की बड़ी गरीबी उसके धन की कमी नहीं है, मकान की कमी नहीं है, बड़ी गरीबी यह है कि उसे मजबूरी में शरीर के आस-पास ही जीना पड़ता है--कपड़े नहीं हैं, खाना नहीं है; बच्चा बीमार है, दवा नहीं है। और हमने जो समाज बनाया है, उसमें अधिक लोगों को हम ईश्वर की तरफ जाने का कोई मौका नहीं छोड़े।
दुनिया से गरीबी मिटे तो ही दुनिया में ईश्वर की खोज व्यापक पैमाने
पर हो सकती है। दुनिया से गरीबी मिटे तो हर आदमी के लिए ईश्वर एक प्यास बन ही जाएगी। क्योंकि तब छोटी प्यासें पूरी हो जाएंगी। और जैसे ही छोटी प्यासें पूरी हो जाती हैं, छोटी जरूरतें निपट जाती हैं, बड़ी जरूरतें जिंदगी में पैदा होती हैं। जैसे ही शरीर का काम तृप्त हो जाता है वैसे ही आत्मा की यात्रा शुरू होती है।
मैं कहूंगा उन मित्र से जिन्होंने पूछा है कि वह गरीब आदमी क्या करे ईश्वर को पाने के लिए?
बहुत मुश्किल बताना मालूम पड़ता है कि गरीब आदमी ईश्वर को पाने के लिए क्या करे। यह ऐसे ही है जैसे कोई आदमी कहे कि एक बीमार आदमी भी कुश्ती लड़ना चाहता है, वह बीमार आदमी कुश्ती लड़ने के लिए क्या करे? वह बीमार आदमी शरीर से बीमार है। वही तो अड़चन बन गई है उसकी। गरीब आदमी की भी वही अड़चन बन गई है कि वह शरीर के तल पर बिल्कुल असमर्थ है। वह असमर्थता इतनी ज्यादा है कि उसे पूरा करना पहले जरूरी है, तभी पीछे उसकी कोई और आकांक्षा पैदा हो सकती है।
और अगर गरीब आदमी भगवान की खोज में भी जाए, अगर वह मंदिर में हाथ जोड़
कर भी खड़ा हो, और हम उसके हृदय को खोल सकें, तो हम पाएंगे कि वहां प्यास परमात्मा की नहीं है, वहां हाथ जा.ेड कर वह फिर रोटी मांग रहा है, नौकरी मांग रहा है, कपड़े मांग रहा है। भगवान के सामने भी वह भगवान के लिए जा सकता। उसकी जरूरतें बहुत नीचे की हैं। और इसमें वह कसूरवार नहीं है, इसमें हम सब जिम्मेवार हैं, इसमें हमारा पूरा समाज जिम्मेवार है।
हम कुछ लोगों को गरीब होने के लिए मजबूर किए हैं और हमने जो व्यवस्था चुनी है वह ऐसी है कि उसमें कुछ लोग अनिवार्य रूप से अमीर हो जाएंगे और अधिक लोग अनिवार्य रूप से गरीब हो जाएंगे। और जो अमीर होंगे उनका अमीर होना गरीबों के गरीब होने पर ही निर्भर होगा। यहां जितनी गरीबी बढ़ती जाएगी वहां उतनी अमीरी बढ़ती जाएगी। यह व्यवस्था एकदम अवैज्ञानिक, अधार्मिक, पापपूर्ण। इस पापपूर्ण व्यवस्था को तोड़ना जरूरी है।

लेकिन वे मित्र तो पूछेंगे कि मैं तो अभी गरीब हूं, यह व्यवस्था कब टूटेगी और कब यह व्यवस्था बदलेगी? मैं क्या करूं?

उनसे इतना ही कह सकता हूं, अगर सच में ही उनके मन में ईश्वर की प्यास पैदा हो गई है, तो मैंने तीन दिनों में जिन सूत्रों की बात कही है, आज सुबह विशेषकर जिन तीन सूत्रों की बात कहा हूं, उन पर थोड़े प्रयोग करें। कठिन होगा, लेकिन अगर संकल्प मजबूत हो, तो शरीर की जरूरतों को भूला जा सकता है और भीतर प्रवेश किया जा सकता है। हालांकि बहुत कठिन है।
उपनिषद में एक कथा हैः उद्दालक ऋषि का बेटा गुरु के आश्रम से शिक्षा पाकर वापस लौटा है। गुरु के आश्रम में उसने वेदांत की ऊंची से ऊंची बातें

सीखीं, बह्मज्ञान की चर्चाएं सुनीं। वह घर आया। और जैसे कि युवक ज्ञान से भरे हुए घर लौटते हैं विश्वविद्यालय से, ऐसा ही विश्वविद्यालय से ज्ञान से भरा हुआ घर लौटा। घर आकर उसने सुबह-सांझ ज्ञान की बातें शुरू कर दीं। वह, वह जब भी बात उठती, ब्रह्म की बात ले आता। उसका पिता बहुत हंसता।
उस बेटे ने पूछा, आप हंसते क्यों हैं? उसने कहा कि थो.ड़े दिन बाद तुम्हें बताऊंगा। तुम पंद्रह दिन का उपवास कर लो। उसके बेटे ने कहाः यह किसलिए? उसके बाप ने कहाः कुछ जरूरी बात तुम्हें बतानी है, इसलिए उपवास करना जरूरी है। उस बेटे ने उपवास किया। तीन दिन की भूख के बाद उसका बाप उससे पूछता है, क्या सोच रहे हो? वह कहता, सिवाय भूख के और कुछ सोच में नहीं आता। सिर्फ रोटी ही रोटी ख्याल में आती है। सात दिन बीत गए, बाप पूछता है, क्या सोच रहे हो? फिर पंद्रह दिन बीत गए, बाप ने कई बार पूछा। एक दफा उसने नहीं कहा कि ब्रह्म का विचार कर रहा हूं। पंद्रहवें दिन तो वह गुस्से में आ गया कि क्या बार-बार पूछते हैं कि क्या सोच रहा हूं, सिवाय भूख के और कुछ भी नहीं सोच रहा हूं। सिवाय रोटी के कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।
उसके पिता ने कहाः ब्रह्म का कोई विचार नहीं आता? उसके बेटे ने कहाः ब्रह्म? पंद्रह दिन से कोई भी स्मरण नहीं है। तो उसके बाप ने कहाः मैं तुझे एक शिक्षा देना चाहता हूं, अन्न पहला बह्म है।
पहली जरूरत पूरी न हो तो ऊपर की बातें सब व्यर्थ हैं। तीन दिन खाना खाया है, फिर बह्मज्ञान वापस लौट आया है। इसका यह मतलब नहीं है कि बह्मज्ञान झूठा है। इसका कुल मतलब इतना है कि जीवन-चेतना पहली बुनियादी जरूरतों को पहले पूरा करती है, फिर बाद की जरूरतें हैं, ऊंची जरूरतें हैं। हम एक मंदिर बनाते हैं, तो हम नींव के पत्थर पहले रखते हैं, पहले शिखर नहीं बनाते। पहले शिखर बनाने का क्या अर्थ है? नींव के पत्थर पहले रखते हैं, हालांकि नींव जमीन में दब जाएगी, कोई देखने नहीं आएगा। कोई मंदिर बनाने वाला सोच सकता है कि नींव के पत्थर क्यों भरते हैं, इसे तो कोई देखने आता नहीं है, नींव जमीन में दब जाएगी। लेकिन उसी पर पूरा मंदिर खड़ा होगा। और नींव के पत्थर ही अगर कमजोर हों, या न हों, तो शिखर के खड़े होने की कोई उम्मीद नहीं।
शरीर बुनियाद है मनुष्य के जीवन की, आत्मा शिखर है। शरीर ही मुश्किल में पड़ा हो तो शिखर की तरफ जाना बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन सामूहिक रूप से तो बहुत मुश्किल है कि गरीब समाज धार्मिक हो सके, लेकिन एक-एक व्यक्ति के तल पर चेष्टा की जा सकती है। लेकिन बड़ा श्रम लगेगा, व्यर्थ श्रम लगेगा। और वह श्रम यह होगा कि शरीर को थोड़ा विस्मरण करने की जरूरत पड़ेगी। रोज की सामान्य जरूरतों को घंटे भर के लिए कम से कम भूल जाने की चेष्टा करनी पड़ेगी। मुश्किल पड़ेगी यह बात। धनी को भूल जाना बहुत सुलभ है। और इसीलिए महावीर और बुद्ध राजाओं के बेटे सहज ही साधना की गहराइयों में जा सके, सहज ही।
आज अमरीका में संभावना है, रूस में भी कल संभावना है कि धर्म का एक बिल्कुल नवोत्थान हो जाए। और उसका कारण यह है कि सब जरूरतें पूरी हो गईं, आदमी पूछता है, शरीर की सब जरूरतें पूरी हुईं, अब क्या? और अब पहली दफा उसे लगता है और कोई नई दिशा मिलनी चाहिए, जीवन की चेतना जहां विकास करे। लेकिन व्यक्तिगत रूप से गरीब से गरीब आदमी भी परमात्मा की तरफ जा सकता है। सामूहिक रूप से नहीं। जाने में संकल्प की जरूरत पड़ेगी। जाने में ध्यान रखना पड़ेगा--भूख का भी ध्यान रखना पड़ेगा। अगर भूख भी पेट में है, तो ध्यान रखना पड़ेगा कि भूख मुझे है या मैं भूख को जान रहा हूं? इस पर थोड़े श्रम उठाने पड़ेंगे। थोड़ी साधना करनी पड़ेगी।
जीवन की छोटी-छोटी जरूरतें मेरे बाहर हैं। पूरी नहीं हो रही हैं, तकलीफ है, उनका दंश है, घाव है, वह घाव मुझको ही लग रहा है या मैं अलग हूं? कठिन होगा।
स्वस्थ शरीर में शरीर को भूल जाना बहुत आसान है। बीमार शरीर में शरीर
को भूलना थोड़ा मुश्किल है। लेकिन भूला जा सकता है। शरीर से ऊपर उठा जा सकता है। दुख में भी हम जाग सकते हैं, सुख में भी जाग सकते हैं। दुख में भी हम जान सकते हैं कि दुख बाहर है, सुख में भी जान सकते हैं, सुख बाहर है और

मैं पृथक हूं। और एक ही स्मरण आ जाए कि मैं पृथक हूं, तो जीवन में धर्म की शुरुआत हो जाती है।
नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कोई आदमी को धार्मिक बनना हो तो पहले
वह धन कमाने की यात्रा पर निकल जाए। न, यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि पहले वह सम्राट हो जाए, तब धार्मिक हो सकेगा। मैं समाज के तल पर जरूरत की बात कह रहा हूं कि गरीब समाज का धार्मिक होना कठिन है, मुश्किल है। गरीब व्यक्ति हो भी सकता है।
सिकंदर हिंदुस्तान की तरफ आता था। जीतने निकला था सारी दुनिया को। रास्ते में यूनान छूटता था, तब किसी ने खबर दी कि पास ही एक नदी के तट पर एक डायोजनीज फकीर है, नग्न रहता है। सुना है सिकंदर कभी उसके बाबत। लोग कहते हैं कि बड़े से बड़े सम्राट भी उसके सामने फीके हैं। सिकंदर ने कहाः क्या? क्या है उस फकीर के पास? उन लोगों ने कहाः यही मजे की बात है, उसके पास कुछ भी नहीं है, एकदम नग्न नदी के तट पर वह पड़ा है। सिकंदर ने कहाः फिर मैं उसे देखना चाहूंगा।
सिकंदर गया है, सुबह का समय है, धूप निकली है, सर्दी के दिन हैं। नंगा डायोजनीज लेटा है रेत में। सिकंदर जाकर खड़ा हो गया है और डायोजनीज से उसने कहा है, आपके पास कुछ भी नहीं है और आप इतने आनंद से लेटे हुए हैं? डायोजनीज ने कहाः तुम्हारे पास सब कुछ है, तुम आनंद में हो?
सिकंदर एक बार संदेह में खड़ा रह गया। कहा हंस कर कि ठीक कहते हो, सब कुछ है, लेकिन आनंद तो नहीं है। तो डायोजनीज ने कहाः सब कुछ होने से आनंद के होने का क्या संबंध है? और अगर सब कुछ होने पर भी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता कि आनंद नहीं मिला, और अभी भी तुम और बड़े साम्राज्यों को जीतने जाते हो, तो बड़े पागल हो! देखता हूं कई दिन से फौज-फाटे चले जा रहे हैं, तोपें जा रही हैं, सैनिक जा रहे हैं। कहां निकले हो? क्या इरादे हैं?
सिकंदर ने कहाः पहले एशिया माइनर जीतना है, फिर हिंदुस्तान जीतना है, फिर सारी दुनिया जीत कर वापस लौटना है।
डायोजनीज ने कहा, क्या मैं पूछूं, कि सारी दुनिया जीत कर क्या करोगे? अंत में क्या उद्देश्य है?
सिकंदर ने कहाः बस, आखिर में सब जीत कर आराम करना चाहता हूं। शांति से आराम करना चाहता हूं। वह डायोजनीज जोर से अपने कुत्ते को बुलाया जो उसके झोपड़े में बैठा था कि सुन, इधर आ। सिकंदर तो बहुत हैरान हो गया! डायोजनीज का कुत्ता भागा हुआ आया। उसने कहा कि देख पागल, कुत्ते से कहा, सिकंदर को देख, यह कह रहा है कि सारी दुनिया जीत लूंगा तब आराम से रहूंगा। और हम दोनों यहां बिना दुनिया को जीते आराम से रह रहे हैं। हमने बड़ी गलती कर दी, हम भी दुनिया जीत लेते! सिकंदर से कहा, लेकिन मैं पूछता हूं, अगर आराम से ही जीना है, तो मैं सबूत हूं कि आराम से जी रहा हूं। तो तुम भी आ जाओ, यह झोपड़ा काफी बड़ा है, हम दोनों इसमें समा जाएंगे। तुम भी यहीं आराम करो। आओ, लेट जाओ।
सिकंदर ने कहाः निमंत्रण के लिए धन्यवाद। और हिम्मत का निमंत्रण है, लेकिन बीच से कैसे लौट सकता हूं? अभी तो जाना पड़ेगा। निकल ही पड़ा हूं, तब तो दुनिया जीतनी पड़ेगी।
डायोजनीज ने कहाः तुम्हें हमें पता है कि दुनिया की यात्रा कभी पूरी नहीं होती। और जिसे लौटना हो आधे से ही लौटना पड़ता है। और क्या भरोसा, जिंदगी पूरी हो जाए और यात्रा पूरी न हो, तुम न आ पाओ? सिकंदर ने कहाः नहीं, कोशिश करूंगा। लौटते वक्त फिर मिलूंगा।
डायोजनीज अपने कुत्ते से फिर कहने लगा, ध्यान रखना, यह वायदा दे रहा है, हालांकि आदमी का क्या वायदे का भरोसा? आज है कल मौत आ जाए। क्या भरोसा? फिर सिकंदर ने कहाः मैं बहुत खुश हुआ मिल कर। इतना हिम्मतवर आदमी मैंने कभी नहीं देखा। वह अभी भी लेटा है। सिकंदर ने कहाः मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं? मेरे पास सब है।
डायोजनीज ने कहाः मेरे लिए क्या कर सकते हो, यह तुमने बड़ा कठिन सवाल पूछा। क्योंकि मेरे लिए करने को कुछ भी नहीं बचा है, सिर्फ एक कृपा करो, थोड़ा धूप छोड़ कर खड़े हो जाओ। धूप आ रही थी, तुम बीच में बाधा बन गए हो। इतना

भर कृपा करो, थोड़ा धूप छोड़ दो। और ध्यान रहे, किसी की भी धूप मत छीन लेना।
तुम आदमी खतरनाक मालूम पड़ते हो। तुम किसी की भी धूप छीन सकते हो। तुम्हारे हाथ में तलवार खतरनाक है।
सिकंदर हंसता हुआ, लेकिन मन में रोता हुआ विदा हुआ। बात तो चोट खा गई उसे कि एक आदमी जिसके पास कुछ भी नहीं है, आनंद को उपलब्ध हुआ है।
हो सकता है एक आदमी आनंद को उपलब्ध जिसके पास कुछ भी न हो। लेकिन बड़े साहस की, बड़े संकल्प की जरूरत है। जब कुछ पास न हो तब यह जानने की कि कुछ भी मिलने से कुछ न मिलेगा, बहुत कठिन है। जब सब मिल जाए तब यह जान लेना बहुत सरल है कि सब मिलने से कुछ भी नहीं मिल जाता है।
कुछ लोग कोशिश करें, तो नितांत दीनता में भी जान सकते हैं कि सब मिलने
से भी कुछ नहीं मिलेगा। लेकिन बहुत थोड़े लोग इतना संकल्प कर सकते हैं। लेकिन सब किसी को भी मिल जाए, साधारण से साधारण संकल्प के आदमी को समस्त मिल जाए, सारी पृथ्वी का राज्य मिल जाए, सब मिल जाए, तो उसे भी दिखाई पड़ सकता है कि कुछ भी नहीं मिला। सब मिल गया और कुछ चूक गया है। कुछ जिसकी प्यास थी वह नहीं मिल पाया है।
सिकंदर मन में रोता हुआ, ऊपर से हंसता हुआ लौटा।
हम सभी ऐसे हैं, मन में रोते हैं, ऊपर से हंसते रहते हैं।
उसके सेनापतियों ने उससे कहा भी कि आपकी हंसी आज बड़ी झूठी मालूम पड़ती है। फिर सिकंदर हिंदुस्तान के बाद वापस लौटा लूट कर और बहुत संपत्तियां लेकर। सोचा था कि डायोजनीज से जरूर मिलता चला जाऊंगा। लेकिन रास्ते में सिकंदर मर गया, पहुंच नहीं पाया।
हममें से बहुत लोग भी बाहर की खोज की यात्रा पर निकलते हैं, रास्ते में ही डूब जाते हैं, भीतर के घर तक पहुंच नहीं पाते। सिकंदर भी नहीं पहुंच पाया। मरते वक्त ख्याल तो आया होगा डायोजनीज का कि कहा था उस फकीर ने, पता नहीं, लौट पाओ, न लौट पाओ। अब उसका कुत्ता और वह दोनों हंस रहे होंगे कि देखो, सिकंदर नहीं लौट पाया।
लेकिन संयोग की बात कि जिस दिन सिकंदर मरा उसके घंटे भर बाद डायोजनीज
भी मर गया। और यूनान में दोनों के मर जाने के बाद किसी होशियार आदमी ने एक कहानी प्रचलित कर दी कि उन दोनों का वैतरणी पर स्वर्ग में प्रवेश करते वक्त फिर मिलना हो गया। सिकंदर आगे है घंटे भर पहले मरा है, पीछे डायोजनीज है घंटे भर बाद मरा है। डायोजनीज नंगा फकीर था जब सिकंदर मिला था। सिकंदर बहुत कीमती आभूषणों और वस्त्रों से ढंका था। लेकिन आज सिकंदर भी नंगा है। डायोजनीज तो नंगा था ही, वह वैसा का वैसा है।
सिकंदर बहुत डरने लगा मन में। पीछे से खड़बड़ की आवाज सुनी, लौट कर देखा, डायोजनीज आ रहा है। उसके तो प्राण निकल गए होंगे। नंगा हूं आज, डायोजनीज ने उसी दिन सलाह दी थी कि आ जाओ, यहीं लेट जाओ, जगह काफी है। आज डायोजनीज फिर जोर से हंसेगा। डायोजनीज हंसने ही लगा। सिकंदर रुका। डायोजनीज के हंसने में कहीं डर न जाऊं, इसलिए उसने भी हंसने की कोशिश की। और जोर से हिम्मत बढ़ाने के लिए कहा, अपनी हिम्मत बढ़ाने के लिए। जैसे अंधेरे में आदमी जोर से गीत गाने लगे और सीटी बजाने लगे, ऐसा जोर से डर कर उसने भीतर हिम्मत बढ़ाने के लिए कहा, अच्छा, डायोजनीज हो! कितनी खुशी की बात है, एक बादशाह का एक फकीर से मिलना वैतरणी पर शायद ही पहले कभी हुआ हो?
डायोजनीज खूब हंसने लगा, उसने कहा, बिल्कुल ठीक कहते हो। लेकिन थोड़ी
सी भूल करते हो। भूल यह करते हो कि कौन बादशाह है और कौन फकीर है, इसमें भूल करते हो। बादशाह पीछे है, फकीर आगे है। सिकंदर आगे है, डायोजनीज पीछे है। डायोजनीज कहने लगा, तुम क्या लेकर आए हो, सब खोकर आए हो। और मैं कुछ भी खोकर नहीं आया, क्योंकि जो भी खोया जा सकता था वह मैंने खुद ही छोड़ दिया था। मैंने वही बचाया था जो खोया नहीं जा सकता। और तुमने वह सब इकट्ठा किया था जो खो ही जाएगा। कहां हैं तुम्हारे राज्य? कहां हैं तुम्हारे धन? कहां हैं तुम्हारे महल? कहां हैं तुम्हारी विजय की कहानियां? वे वेशभूषाएं कहां गईं? वे कीमती वस्त्र कहां गए? नग्न खड़े हो आज। हम यही सोच कर पहले ही नग्न हो गए थे कि न मालूम कब सब छिन जाए, तो हम नंगे ही दीन-हीन पड़े थे। तुमने उस दिन समझा होगा इसके पास कुछ भी नहीं है। हमने वही बचा लिया था जो

बचता है अंत में। वह छोड़ दिया था जो छूट ही जाता है। और ध्यान रहे, जो चीज छूटनी है, जब छुड़ाई जाती है, तो दुख देती है और जब छोड़ दी जाती है तो सुख दे जाती है।
नहीं, गरीब भी धार्मिक तो हो सकता है, लेकिन बड़े संकल्प की जरूरत है, बड़े साहस की। लेकिन यह मेरा मानना है कि समाज, गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता है। इतना संकल्प कहां से जुटाएंगे? इतनी साधना कहां से लाएंगे? समाज तो समृद्ध होना ही चाहिए। समाज की समृद्धि जितनी बढ़ेगी, उतने धर्म के अवसर, संभावना बढ़ेगी। और इसलिए मेरी दृष्टि में पृथ्वी उस क्षण के करीब पहुंच रही है जहां हम गरीबी को मिटा देंगे, जहां हम दरिद्रता को पोंछ डालेंगे और जहां हम एक-एक आदमी की शरीर की सारी जरूरतें पूरी कर देंगे, उस दिन कितनी मानव चेतना इकट्ठी होकर परमात्मा की तरफ गमन करेगी, इसे आज कहना बहुत मुश्किल है। लेकिन पृथ्वी अब तक अधार्मिक रही है। कुछ लोग धार्मिक हुए हैं। मनुष्य अधार्मिक रहा है, कुछ मनुष्य धार्मिक हुए हैं।
किसी दिन अगर हम जमीन को सुख और शांति और समृद्धि से भर दें, तो समाज धार्मिक होगा, व्यक्ति नहीं। व्यक्तियों के धार्मिक होने से कुछ होता भी नहीं है। कितना ही बड़ा व्यक्ति हो--महावीर हो, बुद्ध हो, कृष्ण हो, क्राइस्ट हो, क्या होता है? एक तारा चमक जाता है और फिर अंधेरे में खो जाता है। और हमारा घना अंधेरा अपनी राह पर चलता रहता है। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है।
एक-एक व्यक्तियों के धार्मिक होने से मनुष्य का यह अधर्म का इतना अंधकार नहीं मिटेगा। सामूहिक तल पर, कलेक्टिव कांशसनेस के तल पर, सामूहिक चेतना के तल पर धर्म का अभ्युदय होगा, करोड़-करोड़ लोग एक साथ प्रभु की पुकार और प्यास से भरेंगे और खोज से भरेंगे जिस दिन उसी दिन पृथ्वी का सारा वातावरण बदलेगा। उसके पहले नहीं बदल सकता है।
बहुत घना अंधकार है। एक-एक दीया जलाने से नहीं टूटेगा। हजार-हजार, करोड़-करोड़ दीये जलने की जरूरत है कि अंधेरा टूट जाए। बहुत घनी दुर्गंध है, एकाध फूल खिल जाए पृथ्वी पर, सुगंध नहीं फैलेगी। गांव-गांव, घर-घर, एक-एक आदमी के प्राण पर फूल खिलेगा, तो सुगंध फैलेगी।
मनुष्य बहुत दुख में जीया है और बहुत पाप में और बहुत कष्ट में, बहुत चिंता में। उस चिंता, उस कष्ट, उस पाप को हम गरीबी को मिटाए बिना नहीं मिटा सकते हैं। इसलिए यह मुझसे मत पूछें कि मैं प्रच्छन्न कम्युनिस्ट हूं, छिपा हुआ कम्युनिस्ट? कोई नासमझ ऐसा कहता होगा। मैं तो बिल्कुल सीधा कम्युनिस्ट हूं।
लेकिन कम्युनिस्ट होने का मेरा मतलब किसी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य होने से नहीं है। कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब यह नहीं है कि जो चीन में हो रहा है वह हिंदुस्तान में हो। कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब यह नहीं है कि रूस में एक करोड़ आदमियों की हत्या की गई तो हिंदुस्तान में की जाए। कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब यह है कि करुणा, प्रेम और सदभाव के जन्म से और लोकतांत्रिक जीवन-पद्धति के मार्ग से हम जितनी शीघ्रता से जीवन के पुराने ढांचे को तोड़ सकें उतना अच्छा है।
और कोई कम्युनिस्ट जो हिंसक है, मेरी दृष्टि में ठीक अर्थों में कम्युनिस्ट नहीं है, साम्यवादी नहीं है। क्योंकि हिंसा किसकी करोगे? जिन पर करुणा करके एक सुख का समाज निर्मित करना है उनकी ही। रूस में एक करोड़ लोगों की हत्या स्टैलिन के समय में हुई है। ये एक करोड़ लोग अरबपति तो नहीं हो सकते। एक करोड़ अरबपति होते रूस में तो फिर कहना ही क्या था? ये एक करोड़ लोग कौन होंगे? ये साधारण मजदूर थे, गरीब किसान थे, भिखमंगे थे। इनमें सब सम्मिलित थे। एक करा.ेड लोगों की हत्या के बाद अगर जबरदस्ती हम समाजवाद लाएं, वह कितनी देर टिकेगा? और स्टैलिन के मरने के बाद जैसे ही सख्ती थोड़ी ढीली हुई है, वह समाजवाद जो जबरदस्ती लाया गया था, बिखरना शुरू हो गया है। स्टैलिन के मरने के बाद रूस के कदम पूंजीवाद की तरफ रोज-रोज पड़े हैं। एक बहुत चमत्कारपूर्ण घटना घटनी शुरू हुई है। अमरीका रोज-रोज समाजवाद की तरफ कदम उठा रहा है, रूस रोज-रोज पूंजीवाद की तरफ कदम उठा रहा है। भविष्य में संभावना इस बात की है कि वे दोनों एक जगह आकर मिल जाएं, जहां रूस पूंजीवाद

से समझौता कर ले, जहां अमरीका समाजवाद से समझौता कर ले, और एक बीच की व्यवस्था पैदा हो जाए। शायद वही सम्यक और स्वाभाविक व्यवस्था भी हो। हिंसा से कोई समता नहीं लाई जा सकती है, क्योंकि हिंसा का भाव ही समता
का विरोधी है। समता तो लाई ही जा सकती है करुणा से, प्रेम से, और इसलिए धर्म की एक चेतना फैलाने की जरूरत है।
मेरा कम्युनिस्टों से इस मामले में बुनियादी विरोध है कि वे अधार्मिक हैं या धर्म-विरोधी हैं? मेरी कल्पना के भी बाहर है कि धर्म के विरोध में होकर दुनिया में समता लाने का उपाय क्या है? और मेरी कल्पना के यह भी बाहर है कि जो आदमी मनुष्य के भीतर आत्मा को इनकार करता है और जगत में परमात्मा को इनकार करता है, फिर उसको गरीब के दुख की बात करनी फिजूल है। एक मशीन है, दुख में या सुख में, इससे क्या फर्क पड़ता है। एक मशीन को कोई दुख होता है? किसी मशीन को आप गरीब कहते हैं? किसी कार को अगर पैट्रोल न मिले तो गरीब हो गई? और किसी कार को पैट्रोल मिले तो अमीर हो गई? और हम लड़ाई-झगड़ा करेंगे कि जिस कार को पैट्रोल नहीं मिल रहा है इसकी मशीन को बड़ा दुख हो रहा है।
अगर मार्क्स की यह बात सच है कि मनुष्य पदार्थ है, तो दुनिया में समाजवाद लाने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि आदमी नहीं है, मशीनें हैं, और मशीनों में न दुख होता है, न सुख होता है। तेल मिल जाए तो मशीन चलने लगती है, न मिले तो नहीं चलती है, खत्म हो जाती है। खत्म हो जाए, हर्ज क्या है। इसी वजह से स्टैलिन जैसा व्यक्ति एक करोड़ लोगों की हत्या कर सका, क्योंकि मशीनें हैं, काट दो, हर्जा क्या है। न कोई भीतर आत्मा है, न कोई संवेदनशील चेतना है। मरने पर कुछ बचता नहीं है। कम्युनिज्म की यह बात मौलिक रूप से कम्युनिज्म के विरोध में है। इसलिए मेरी जरा मुसीबत है। कम्युनिस्ट समझते हैं, मैं कम्युनिस्टों का दुश्मन हूं। कम्युनिस्टों के दुश्मन समझते हैं, मैं कम्युनिस्ट हूं।
मैं धर्म की जितनी गहराइयों में देख पाता हूं, मुझे दिखाई पड़ता है, धर्म और साम्यवाद एक ही चीज के दो पहलू हैं। धर्म भीतरी साधना है, साम्यवाद उसी साधना से हुए अनुभव का बाहर विस्तार है। अगर मैं अपने भीतर जाऊं और मुझे दिखाई पड़े प्रभु, और जिस दिन मुझे अपने भीतर उसकी ज्योति दिखाई पड़ती है, उसी दिन सबके भीतर उसकी ज्योति दिखाई पड़ने लगती है। तब द्वार पर भीख मांगते भिखमंगे को देख कर बहुत पीड़ा शुरू हो जाती है, क्योंकि मैं ही उसकी तरफ से खड़े होकर भीख मांग रहा हूं। और तब एक आदमी को सड़क पर भूखे मरते देख कर पीड़ा होनी स्वाभाविक है। क्योंकि आदमी नहीं है, परमात्मा ही भूखा तड़प रहा है और मर रहा है। और हम सब उसके पास से संवेदनहीन, इंसेंसिटिव, जड़ गुजरे चले जा रहे हैं!
नहीं, धर्म और साम्यवाद मेरे लिए एक ही अर्थ रखते हैं। कोई मुझसे पूछे, क्या आप धार्मिक हैं? तो मैं कहूंगा, हां। और कोई मुझसे पूछे कि आप साम्यवादी हैं? तो मैं कहूंगा, हां, मैं बिल्कुल साम्यवादी हूं। क्योंकि बिल्कुल धार्मिक होने के कारण साम्यवादी होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। और अगर कोई धार्मिक आदमी, कोई साधु-संत, कोई महात्मा कहता हो कि वह साम्यवाद के विरोध में है, तो समझना कि उसे धर्म का भी अनुभव अभी शुरू नहीं हुआ, उसे धर्म की कोई प्रतीति शुरू नहीं हुई। वह किसी न किसी रूप में पूंजीवाद के एजेंट का काम ही कर रहा है और करता चला जाएगा।
और हजारों साल से साधु-संन्यासियों ने पूंजीवाद के एजेंट का काम किया है। एक सांठ-गांठ, एक कांसप्रेसी है, एक शड्यंत्र है। पूंजीवाद संन्यासी को बचाता है। मठ-मंदिर बनाता है, पीठ बनाता है, संन्यासी के लिए आश्रम बनाता है। पूंजीवाद संन्यासी को बचाता है। संन्यासी पूंजीवाद के लिए आड़ बनता है। वह गरीबों को समझाता है, ये अपने पुण्यों का फल भोग रहे हैं, तुम अपने पापों का फल भोग रहे हो। गड़बड़ नहीं करना। इसमें कुछ गड़बड़ किए, तो और पाप हो जाएगा। बगावत मत करना, विद्रोह की बात मत सोचना, संतोष रखो। गरीब को समझाता है, संतोष रखो, धैर्य रखो, सब ठीक हो जाएगा। भगवान अगर कष्ट भी दे रहा है, तो तुम्हारे ही हित में दे रहा है, उसमें भी कोई रहस्य छिपा होगा। और अगले जन्म में सब ठीक हो जाएगा। वह गरीब को समझाता है, गरीब रहने के लिए। अमीर को कहता है, तुम अपने पुण्यों का फल भोग रहे हो। ऐसे अमीर जितने

पाप करता है उनको तो पुण्य का मुलम्मा देता है और ऊपर से सोने की वर्क चढ़ा देता है। और अमीर को भुलावा देता है कि पाप से नहीं हो रहा है धन इकट्ठा, पिछले जन्मों के पुण्य से हो रहा है।
अमीर के भीतर भी दंश पैदा हो सकता है, पीड़ा पैदा हो सकती है, गिल्टी, उसको भी लग सकता है कि मैं कोई अपराध कर रहा हूं। संन्यासी उसके अपराध-भाव को मारता है। उसकी जो गिल्ट फीलिंग है, उसको हटाता है। वह कहता है, तुम्हारे पुण्यों का फल है, तुमने पिछले जन्मों में किया होगा, उसका फल भोग रहे हो। पुण्यों के फल के कारण तुम अमीर के घर में पैदा हुए हो। पुण्यों के फल के कारण धन चला आ रहा है। जब कि धन मौलिक रूप से पाप के बिना न आता है, न इकट्ठा होता है। असल में हम कुछ पापों को पहचानते ही नहीं।
जब तक कुछ लोग गरीब न हो जाएं तब तक मैं अमीर नहीं हो सकता। कुछ लोगों
को गरीब करके ही अमीर हो सकता हूं, यह अपराध नहीं है? प्रूधो ने कहा है, धन चोरी है। और ठीक कहा है। मगर ऐसी चोरी है जो समाज को स्वीकृत है। दो तरह की चोरियां हैं। एक, जिसको समाज स्वीकार नहीं करता। उस चोर को हम जेलखाने में बंद रखते हैं। एक ऐसी चोरी है जिसे समाज स्वीकृत करता है, उस चोरी को हम आदर देते हैं, सम्मान देते हैं।
संन्यासी ने, साधु ने सुरक्षा की है धनपति की और धनपति के भीतर अपराध-भाव पैदा होने से रोका है। और गरीब को संतोष दिया है। और इस भांति संन्यासी बीच में एक पर्त बन कर खड़ा हो गया है, जो जिंदगी और समाज को बदलने नहीं देता।
इसलिए हिंदुस्तान जैसे देश में, जो हमेशा से गरीब है, सबसे ज्यादा गरीब है, लेकिन जहां क्रांति की कोई बात भी पैदा नहीं हो सकती। क्योंकि हिंदुस्तान में संन्यासियों की बड़ी कतार गरीब और अमीर के बीच शॉक एब्जार्वर का काम कर रही है। ट्रेन के डिब्बों के बीच में शॉक एब्जार्वर लगे होते हैं। डिब्बे को धक्का लगता है, एब्जार्वर पी जाता है, डिब्बे के भीतर यात्रियों को पता नहीं चलता है। कार में स्प्रिंग लगे होते हैं, गड्ढा आता है स्प्रिंग गड्ढे को पी जाते हैं, भीतर बैठे आदमी को पता नहीं चलता।
हिंदुस्तान में क्रांति के धक्के पैदा ही नहीं हो पाते। साधु, महात्माओं, मंदिरों, मस्जिदों, पुरोहितों, पंडितों की एक लंबी कतार शॉक एब्जार्वर का काम करती है, वह बीच में सब धक्के पी जाती है। गरीब को कहती है गरीब रहो, यह तुम्हारे कर्मों का फल है। और अगर अभी गड़बड़ की तो आगे भी गरीब रहोगे। शांति रखो, प्रार्थना करो, आगे ठीक हो जाएगा। अमीर को कहते हैं, तुम अपने पुण्यों का फल भोग रहे हो, उसकी अपराध-भावना को कम कर देती है। यह कतार धार्मिक नहीं है। धार्मिक होना मुश्किल है।
धार्मिक होने का इतना ही मतलब नहीं होता कि एक आदमी रोज भगवान के सामने घंटी बजाता हो, कि एक आदमी रोज तिलक-टीका लगाता हो, कि एक आदमी तीन घंटे जप करता हो। धार्मिक होने का इतना ही मतलब नहीं होता। धार्मिक होने का मतलब हैः इतना संवेदनशील होना कि जीवन का सारा तथ्य दिखाई पड़ने लगे, जीवन के सारे तथ्य दिखाई पड़ने लगें। आंख इतनी संवेदनशील होनी चाहिए, चेतना इतनी निर्मल होनी चाहिए कि सब दर्पण की तरह दिखाई पड़ने लगे। धार्मिक व्यक्ति को साफ-साफ दिखाई पड़ेगा, गरीब और अमीर जुड़े हैं। दोनों के बीच लेन-देन चल रहा है। एक शोषण की एक धारा बह रही है। एक नहर खुदी है, जहां से सब अमीर की तरफ चुपचाप चला आता है। सारा श्रम धीरे-धीरे अमीर के पास धन की तरह इकट्ठा हो जाता है। हमें पता नहीं कि ताजमहल किसने बनाया? एक कारीगर के नाम का पता नहीं? जिसने बनाया उसका कोई पता नहीं। जिसने कभी नहीं बनाया, जो कभी देखने भी नहीं गया होगा बनते वक्त, उसका नाम हमें पता है।
पिरामिड किसने खड़े किए इजिप्त में? कहते हैं, एक-एक पत्थर को चढ़ाने में पचास-पचास लोग मर गए, लेकिन कौन मरा उन पत्थरों को चढ़ाने में? क्योंकि क्रेन तो नहीं थी। इतने-इतने बड़े पत्थरों को ऊपर चढ़ाने में निश्चित ही लोग मरे होंगे। हजारों लोगों का खून है, उनका कोई पता नहीं है। लेकिन जिसकी आज्ञा से यह हुआ...

और इजिप्त में जब बन रहे थे पिरामिड, तो एक बड़े पत्थर को जो आदमी की जान लेने वाला हो, उठाना बहुत कठिन है। तो पीछे घोड़ों पर सवार कोड़े मारने वाले लोग रहते थे कि जरा शिथिल हुआ मजदूर कि उसने कोड़े चलाए। कोड़ों की चोट में, कोड़ों से बचने के लिए बड़े से बड़े पत्थर को लेकर मजदूर चढ़ रहा है, फिसल पड़ा है पत्थर, दस-पचास मजदूर दब कर मर गए हैं। मजदूरों की लाशें हटा दी गईं, पचास दूसरे मजदूर जोत दिए गए हैं। पिरामिड खड़ा हो गया।
इतिहास बड़ा गुणगान करते हैं पिरामिड का कि बड़ी सुंदर कृति है। और ताजमहल का गुणगान करते हैं कि बड़ी सुंदर कृति है। लेकिन कितने लोगों का खून समा जाता है? कितने लोगों का श्रम समा जाता है? अगर हम दुनिया की सब बड़ी-बड़ी सुंदर कृतियां भी, उनके भीतर उतर कर देखें, तो उनकी कुरूपता बहुत महंगी मालूम प.ड़ेगी।
यह जो हमने संस्कृति और सभ्यता खड़ी की है, यह कितने शोषण पर खड़ी हुई है, यह कहना बहुत मुश्किल है। लेकिन अब आगे यह नहीं हो सकता। आगे धार्मिक आदमी शॉक एब्जार्वर का काम नहीं करेगा, और करेगा तो उसका दुनिया में बचने का अब कोई उपाय नहीं है। आज नहीं कल उसे विदा होना पड़ेगा। धार्मिक आदमी की एक बिल्कुल नई तस्वीर आने वाले भविष्य में प्रकट होनी चाहिए, तो ही धर्म बचेगा, वह तस्वीर।
अभी सुबह यहां कोई पढ़ रहा था, ओम शांतिः शांतिः शांतिः। बहुत दिन से संन्यासी यही कहते रहे हैं। आने वाले संन्यासी को कहना प.ड़ेगा, ओम क्रांतिः क्रांतिः क्रांतिः। बहुत हो गया शांति का स्वर, बहुत हो गया। बहुत दिन से सुन रहे हैं शांतिः शांतिः। कोई कहे क्रांति भी। और ध्यान रहे, क्रांति के बिना शांति नहीं हो सकती। इतनी अशांति है कि इस पूरी व्यवस्था को बदले बिना शांति नहीं हो सकती।
तो मैं कम्युनिस्ट हूं। छिपा हुआ कम्युनिस्ट नहीं, प्रच्छन्न कम्युनिस्ट नहीं, बिल्कुल स्पष्ट। लेकिन अपने किस्म का अकेला ही हूं, किसी पार्टी वगैरह में नहीं हूं। और कोई पार्टी बनाने को उत्सुक भी नहीं हूं, क्योंकि पार्टी सब नकलचियों की होती हैं। अकेले रहना ठीक है।

एक मित्र ने पूछा है, एक मित्र पूछते हैंः भगवान को जानें ही क्यों? क्या जानने की आवश्यकता है? इसके बगैर नहीं चल सकता?

चलाने की कोशिश तो हम सभी करते हैं, चल नहीं पाता। नहीं चल सकता है। भगवान शब्द का सवाल नहीं है, गहरे में सत्य की खोज का सवाल है, गहरे में स्वयं की खोज का सवाल है, और गहरे में आनंद की खोज का सवाल है।
इस सवाल को ऐसा पूछें कि हम आनंद को खोजें ही क्यों? क्या आनंद को बिना खोजे नहीं चल सकता? चल सकता हो, बिल्कुल चला लीजिए। चल नहीं सकता। चलाने की कोशिश हम करते हैं। भगवान शब्द से बड़ी गड़बड़ पैदा हो गई है। उसके भीतर जो छिपा है, वह छूट ही गया। भगवान से ख्याल आता है कहीं हनुमान जी का, कहीं रामचंद्र जी का, कहीं मंदिर का, कहीं मस्जिद का। भगवान से कुछ दूर और बाहर की चीज का ख्याल आता है, जो गलत है।
भगवान से मतलब केवल है सत्य का, जीवन के परम सत्य का। कैसे चल सकता है सत्य को जाने बिना? एक आदमी अंधेरे में चलते हुए कहे, प्रकाश के बिना नहीं चल सकता है? हम कहेंगे, कोशिश करो। टकराहट होती है, सिर फूटता है, गिर पड़ते हैं, टकरा जाते हैं। वह आदमी कहता है, बिना चलाने से कोई हर्ज है? हम कहते हैं, चलाओ। लेकिन चलता नहीं। रोज की टक्कर बताती है, दुख-संताप बताता है कि चलता नहीं है।
खोजना ही पड़ेगा आनंद को। धार्मिक आदमी उसे भगवान कहते हैं। वह सिर्फ नाम की बात है। आनंद कहें, ठीक होगा। सत्य कहें, ठीक होगा। प्रेम कहें, ठीक होगा। इन सबके जोड़ का इकट्ठा नाम है भगवान।
भगवान कोई व्यक्ति नहीं है कहीं दूर आकाश में बैठा हो, जिसे खोजने जाने की जरूरत हो। कोई जरूरत नहीं है। बैठे हो, बैठे रहो। अगर जरूरत हो, तुम खोजने आ जाना। ऐसा कोई भगवान नहीं है जिसे खोजने हमें कहीं जाना है। भगवान कोई व्यक्ति नहीं है। हमारे ही भीतर जो जीवन की ऊर्जा है, जो लाइफ

एनर्जी है, हम जो हैं उसे बिना जाने कैसे चलेगा! हम अपने को ही नहीं जानते फिर हम दूसरे को भी नहीं जान पाते। फिर सारा जीवन कष्ट हो जाता है, संघर्ष हो जाता है। अज्ञान में चलेंगे, तो कष्ट होगा ही। हम अपने को पहचानते ही नहीं, इसलिए जो भी करते हैं वह हमें कष्ट में उतार देता है। जहां भी जाते हैं, कष्ट में उतर जाते हैं। यही पता नहीं कि क्यों जा रहे हैं, कौन है जो जा रहा है, क्या प्रयोजन है जाने का?
आप पूछते हैंः "बिना जाने नहीं चल सकता?"
नहीं चल सकता। कभी नहीं चला। और अगर कोई चलाएगा तो सारी जिंदगी दुख और पीड़ा की लंबी कहानी हो जाती है। सारी जिंदगी, जन्म से लेकर मृत्यु तक एक दुख की लंबी यात्रा हो जाती है। सुख की आशा रहती है, दुख का अनुभव मिलता है। आशा सुख की रहती है, कल मिलेगा; मिलता दुख है रोज-रोज। कल की आशा में आज के दुख को हम झेल लेते हैं और चलते चले जाते हैं। मरते तक मौत आ जाती है, पता नहीं चलता।
ययाति की बहुत पुरानी कथा है। ययाति मरने को हुआ, सौ वर्ष का हो गया था। एक सम्राट था पुराना। मरने को हुआ, मौत आ गई। द्वार पर मौत ने कहाः ययाति, तैयार हो जाओ, मैं द्वार पर प्रतीक्षा करती हूं। ययाति ने कहाः आ गई तुम? अभी तो कुछ भी नहीं हुआ है; मैं कुछ कर ही नहीं पाया--न कोई सुख जाना, न कोई आनंद। अभी नहीं जा सकता हूं। ययाति घबड़ाने लगा। मौत ने कहाः लेकिन मुझे तो ले जाना पड़ेगा। अगर तुम्हारा बेटा कोई राजी हो, तो मैं उसको ले जाऊं। बिना लिए मैं जाने वाली नहीं हूं। पहले मौत नरम रही होगी, अब तो ऐसी नरम नहीं दिखाई पड़ती। अब तो उसी को ले जाती है जिसको ले जाना हो। पुराने जमाने की बात है, भोली-भाली रही होगी।
ययाति ने अपने बेटों को बुलाया। वे भी पुराने जमाने के बेटे थे, आज के जमाने के बेटे होते तो बुलाने से आते ही नहीं और मौत के वक्त तो बिल्कुल नहीं आते। बाप जिंदा हो, जेब गर्म हो, आ भी जाते। मरते बाप के पास कौन आता है? कहते हैं कि जल्दी-जल्दी समाप्त करो। लेकिन पुराने बेटे थे, आ गए। बेटों से बाप ने कहा कि मुझे मौत लेने आई है और मैंने तो अभी जिंदगी में सुख जाना नहीं, तुममें से कोई अपनी जिंदगी दे दो, तो मौत के साथ चले जाओ।
बड़े बेटे तो होशियार थे। वे तो इधर-उधर देखने लगे। जैसे उम्र बढ़ती है आदमी की चालाकी बढ़ जाती है। छोटा बेटा था, वह इतना चालाक नहीं था। उसने कहाः ठीक है, मैं चला जाता हूं। और फिर उसने कहा कि जब तुम्हें सौ वर्ष में कुछ सुख नहीं मिल पाया, तो मैं नाहक सौ वर्ष क्यों मेहनत करूं, चला ही जाऊं। सौ वर्ष के बाद मुझको जाना पड़ेगा, यह मेहनत मैंने देख ली। तुम्हें सौ वर्ष में नहीं मिला, तो मैं चला जाता हूं। बुद्धिमान भी रहा होगा। जो चालाक नहीं होते, वे ही बुद्धिमान भी हो सकते हैं। चालाक आदमी बुद्धिमान कभी नहीं होता। लेकिन चालाकी अक्सर बुद्धिमानी मालूम पड़ती है।
बेटा चला गया, मौत ले गई। फिर सौ वर्ष बीत गए कब, पता नहीं चला। जिंदगी
कब बीत जाती है, पता चलता ही नहीं। बीत जाती है, तभी पता चलता है। जा चुकी होती है, तभी पता चलता है। उसकी छाया दिखती है जाती हुई। आती हुई जिंदगी दिखती नहीं। बस गई और पता चलता है कि निकल गई हाथ से। सौ वर्ष फिर बीत गए। कब बीत गए, पता न चला। ययाति ने सोचा, सौ वर्ष बहुत बड़े हैं, खोज लेंगे। मौत फिर आ गई, द्वार पर दस्तक दी, ययाति घबड़ाया। उसने कहाः फिर तुम आ गई? क्या सौ वर्ष पूरे हो गए? मौत ने कहाः तुम कहते क्या हो? क्या किया इतने दिन? तुम फिर वैसे ही उदास दिखाई पड़ते हो? उसने कहाः लेकिन अभी तो कुछ नहीं हो पाया। रोज-रोज खोजता हूं सुख को, मालूम होता है, कल मिलेगा। आज निकल जाता है, कल आ जाता है, आशा फिर कल पर चली जाती है। और रोज दुख मिलता है, आशा में सुख रहता है। सौ वर्ष और दे दो, अभी तो मैंने कुछ जाना नहीं। मौत ने कहाः यह तो बहुत मुश्किल है। फिर किसी बेटे को राजी करो।
सौ वर्ष में फिर नये बेटे पैदा हो गए थे, पुराने बेटे तो मर चुके थे। फिर एक बेटा राजी हो गया, ऐसी कहानी चलती है। ययाति इस तरह एक हजार वर्ष जीया। और एक हजार वर्ष के बाद जब मौत ने दस्तक दी, तब वह ठीक उसी हालत में

था जैसी पहली बार सौ वर्ष की उम्र पर दस्तक दी थी। उसने कहाः अच्छा, अब ले ही चलो। हालांकि सुख अभी मिला नहीं, लेकिन अब वह मिलेगा भी नहीं।
ययाति की कहानी तो कहानी है। लेकिन जो जानते हैं, वे कहेंगे, हम भी बहुत सौ बार जी चुके हैं। शरीर बदल जाता है। ययाति का भी बदल गया। बेटे का मिल जाता था। उम्र मिल जाती थी, शरीर बदल जाता है। बहुत जन्म हम भी ले चुके हैं, बहुत बार जी चुके, फिर वही सुख की खोज है, वह मिलता नहीं। मरते हुए आदमी से पूछो, सुख मिला? अगर वह बेईमान न हो, या बच्चों को धोखा न देना चाहे, और बूढ़े बच्चों को धोखा दे रहे हैं। अगर बूढ़े सब सत्य प्रकट कर दें, जिंदगी बहुत और दूसरी हो जाए। लेकिन जो उनके बूढ़ों ने उन्हें धोखे दिए थे, वह अपने बेटों को दिए चले जाते हैं। इल्युजन, भ्रम कायम रहता है। पूछो मरते हुए आदमी से, सुख मिला? वह इतना ही कहेगाः मिलने की आशा थी, मिला नहीं।
एण्ड्रू कारनेगी मर रहा था, अमरीका का एक बहुत बड़ा अरबपति। शायद पृथ्वी पर इतना पैसा किसी दूसरे आदमी के पास नहीं था। कहते हैं, दस अरब रुपया पीछे छोड़ कर मरा। मर रहा है, उसकी जीवन-कथा लिखने वाला लेखक उससे मरने के दिन पूछा कि कारनेगी, आप तो प्रसन्न मर रहे होंगे, दस अरब रुपये दुनिया में शायद ही कोई कभी छोड़ गया हो। आपको आनंदित होना चाहिए, आप एक सफलतम व्यक्ति हो। कारनेगी ने क्रोध से कहाः सफल! क्या कहते हो? सिर्फ दस अरब! मेरे सौ अरब कमाने के इरादे थे। सब असफल हो गया। और अगर कार्नेगी जिंदा रह जाता और सौ अरब कमा लेता, तो भी वह ऐसे ही कहता, सौ अरब! जैसे सौ नये पैसे। क्योंकि तब तक आकांक्षा की यात्रा और आगे चली गई होती।
सुख हमारी आकांक्षा है, दुख हमारा अनुभव। और दुख के अनुभव को हम झेल लेते हैं सुख की आकांक्षा के कारण। और रोज-रोज झेल लेते हैं और भूल जाते हैं, और भूल जाते हैं, और भूल जाते हैं। रोज-रोज वही और जन्म-जन्म वही। अगर चला सकते हो ऐसा ही तो चला लें। लेकिन धर्म कहता है, ऐसे नहीं चल सकता। सत्य को जानना ही पड़ेगा। क्योंकि सत्य को जाने बिना आनंद नहीं मिलता, सिर्फ सुख की आशा बनी रहती है। और सत्य को जानते ही आनंद उपलब्ध होता है, दुख विलीन हो जाता है। सत्य को जाने बिना मृत्यु निरंतर खड़ी ही रहती है। सत्य को जाने बिना चिंता मिट ही नहीं सकती। सत्य को जाने बिना हमारे भटकाव का, हमारे कहीं भी उतराने-तैरने, किन्हीं भी तटों पर भटकने का यह व्यर्थ क्रम नहीं मिटता। सत्य को जानते ही हम एक दूसरी जीवन यात्रा में प्रविष्ट होते हैं, जहां अर्थ है, मीनिंग है, जहां आनंद है, बिलिस है और जहां एक शांति है। जिसे हमने कभी नहीं जाना, जो अपरिचित है, जिसकी हमें कोई पहचान नहीं।
तो मित्र पूछते हैंः "चल जाएगा ईश्वर को जाने बिना?"
कोशिश करें। चल जाए तो अच्छा है। वैसे कभी किसी का चला नहीं; कोशिश असफल हो गई है सदा। और आखिर में पता चला है कि भटक गया जीवन। अगर इतनी ताकत सत्य को, स्वयं को, प्रभु को खोजने में लगाई होती तो पता नहीं क्या हो जाता। चौबीस घंटे कुछ और करते रहें, पांच मिनट भी उसकी खोज जारी रखें, तो जीवन के अंत में पाएंगे कि बाकी चौबीस घंटे व्यर्थ गए, वह जो पांच मिनट उसकी तरफ लगाए थे, वही साथ बच गए हैं, वही संपत्ति बन गए हैं। बाकी सब विपत्ति सिद्ध हुआ है। लेकिन स्मरण नहीं आता है।

एक मित्र ने और पूछा है कि क्या युवक आदमी भी धर्म की बातों में पड़ जाएं? यह तो एक उम्र के बाद की बातें हैं।

ऐसा ही समझाया गया है आज तक। आज तक यही बताया गया है कि वृद्ध का काम
है धर्म। अगर वृद्ध का काम धर्म है, तो फिर जवान का काम अधर्म हो जाए, तो इसमें आश्चर्य नहीं है। आखिर जवान भी तो कुछ करेगा। अगर वृद्ध का काम धर्म है, तो जवान क्या करेगा? तो हमने यह मान लिया है कि जवान अधर्म करे तो चलेगा, वृद्ध भर को धार्मिक होना चाहिए। लेकिन वृद्ध को ही क्यों धार्मिक होना चाहिए? उसका ही क्या कसूर है? उसके कारण दूसरे हैं।

जैसे ही मौत करीब आती है, आदमी के पैर डगमगा जाते हैं। जैसे ही मौत सामने आने लगती है, वैसे ही आदमी को लगता है जो मैंने किया वह व्यर्थ गया।
मौत के सामने लड़ने में मैंने जो कमाया है उसकी क्या ताकत। मेरे रुपये किस काम आएंगे इस मौत के सामने आने पर, मेरा पद रोकेगा मुझे, यह मौत सामने खड़ी। वह घबड़ाने लगता है। वह सोचता हैः अब परमात्मा को पुकार लूं, ईश्वर को खोजूं। अब मौत से डर कर खोजता है। डर से कहीं सत्य की खोज हुई है।
मरते वक्त लोग सोचते हैं, ईश्वर का स्मरण कर लेंगे, और बेईमानों ने यह सिखाया है कि मरते वक्त एक दफा नाम भी ले लोगे तो सब ठीक हो जाएगा। अब ये बिल्कुल झूठी बातें हैं। जिस आदमी की पूरी जिंदगी और थी, वह मरते वक्त राम का नाम ले कैसे सकेगा? मरते क्षण में तो वही हमारी चेतना में होगा, जो जीवन भर का निचोड़ और निष्कर्ष है। मृत्यु के क्षण में तो सारे जीवन का सार हमारी आंखों के सामने खड़ा हो जाता है। जो लोग कभी पानी में डूबे हैं और मर नहीं पाए, उन लोगों का अनुभव यह है कि डूबते वक्त जब लगता है कि मर रहे हैं, तो सारी जिंदगी की तस्वीरें एकदम से घूम जाती हैं, जैसे फिल्म के पर्दे पर तेजी से फिल्म घूम गई हो, एक सेकंड में सारी जिंदगी घूम जाती है। और वह जिंदगी का जो सार है आंख के सामने खड़ा हो जाता है।
मरते वक्त हमारे चित्त में वही होगा जो जीवन भर हमने संवारा है। मरते वक्त राम नहीं हो सकता। कैसे होगा? लेकिन होशियार और चालाक लोग कहते हैं कि अगर तुम्हारे मन में न भी हो तो कोई हर्ज नहीं, एक किराए का पंडित बुला लेना, वह कान में राम-राम, राम-राम करता रहेगा। अब कहीं किराए से भी धर्म उपलब्ध हुआ है? कि एक आदमी तुम मरना और एक आदमी भगवत गीता पढ़ेगा। तुम मरना और एक आदमी इधर नमोकार-मंत्र पढ़ेगा, तो मरना और कान में सब कह देगा जो कहना है कि तुम्हें जानना है। मरते क्षण सुनने की हैसियत भी नहीं रह जाती है आदमी की, और अगर उसका वश चले तो वह कहेगा बकवास बंद करो। क्योंकि उसे सब यह बकवास मालूम पड़ेगी। वह तो बेहोश हो रहा है इसलिए कुछ कह नहीं सकता। सुन रहा है बेचारा, तुम बके चले जा रहे हो। जिसने जिंदगी भर इसको बकवास समझा, आज मरते वक्त यह सार्थक कैसे हो जाएगी?
जीवन एक सतत धारा है। जैसे गंगा बहती है गंगोत्री से गंगासागर तक। एक सतत धारा है। जो गंगोत्री में है वही सागर में गिरते वक्त है बड़ी होकर। वही मूल-स्रोत बढ़ता हुआ चला आया है। कोई कहे कि गंगा काशी तक तो पवित्र नहीं रहती अपवित्र रहती है और काशी पर आकर एकदम पवित्र हो जाती है, तो हम नहीं मानेंगे कि हो कैसे जाएगा? अपवित्र गंगा की धारा काशी पर भी अपवित्र रहेगी। जो धारा आई है उसी की कंटिन्युटी, उसी का सातत्य तो रहेगा। जीवन की चेतना एक धारा है। जीवन भर जिस धारा में जो रहा है, मरते क्षण भी वही रहेगा। धारा नई कैसे हो जाएगी?
नहीं, जवान आदमी को ही नहीं छोटे बच्चे को भी धार्मिक होने की जरूरत है। अगर मृत्यु के क्षण तक प्रभु का साक्षात्कार कर लेना हो, तो जन्म के पहले दिन से ही यात्रा की व्यवस्था शुरू हो जानी चाहिए। यह अंत में छोड़ देने की बात नहीं, कल पर टाल देने की बात नहीं। क्योंकि सबसे ज्यादा अल्टिमेट, सबसे ज्यादा चरम प्रश्न ही यही है कि मैं स्वयं को और सत्य को कैसे जान लूं, मैं वहां कैसे पहुंच जाऊं जहां अंधकार नहीं प्रकाश।
नहीं, इसे हम अंत पर नहीं छोड़ सकते हैं। यह आखिर में नहीं होगा। यह हमें रोज जीना पड़ेगा। हम मान लेते हैं आखिर में होने की बात, क्योंकि हमको खुद पोस्टपोन करने में सुविधा मालूम पड़ती है कि कल देखेंगे, परसों देखेंगे, नरसों देखेंगे। कल का भरोसा है? परसों का भरोसा है? एक क्षण का भरोसा नहीं है। इस क्षण में जो जरूरी है, वह मुझे कर लेना चाहिए। और सबसे ज्यादा जरूरी धर्म है, बाकी सब चीजें उससे पीछे हैं, नंबर दो हैं। नंबर एक और कोई चीज नहीं हो सकती।
तो मैंने ये जो, ये जो बातें कहीं, ये वृद्धजनों के लिए नहीं कहीं। और वृद्धजनों में भी केवल वे ही इन बातों को कर पाएंगे जो शरीर से ही वृद्ध हो गए हैं, मन से युवा हैं। असल में करने के लिए युवापन चाहिए ही। चाहे शरीर में, चाहे मन में। युवा ही कुछ कर सकता है। जैसे-जैसे वृद्ध होता जाता है

व्यक्ति शरीर से, तो होता ही है, अगर मन से भी वृद्ध हो जाए, तो फिर नया कुछ भी करना असंभव हो जाता है।
वृद्ध होने का एक ही लक्षण हैः नया सीखने की असमर्थता। वृद्ध नया नहीं सीख सकता, पुराने को सिर्फ दोहरा सकता है। सीखने की क्षमता कम हो जाती है। जो सीख लिया उसी में जीने की क्षमता रहती है। जीवन भर सीखा संसार, मरते वक्त सत्य कैसे आ जाएगा? जीवन भर सीखा अधर्म, अंतिम क्षण में धर्म कैसे आ जाएगा? बीज हम जिसके बोएंगे, फल भी उसी के उपलब्ध होते हैं। और कडुए बीज बोए हैं, तो मीठे फलों की संभावना नहीं।
इसलिए यह बात बिल्कुल जड़ से उखड़ कर फिंक जानी चाहिए कि धर्म वृद्धों
का काम है। धर्म पूरे जीवन की साधना है पहले दिन से। बल्कि जो बहुत गहरे में जानते हैं, वे कहेंगे, गर्भाधारण के क्षण से, जिस क्षण से मां के पेट में गर्भ निर्मित हुआ है, उस क्षण से धर्म की साधना शुरू हो गई। और अगर मां समझदार हो तो अब इन नौ महीनों में एक जीवन जो उसके भीतर विकसित हो रहा है, अगर उसका उसे थोड़ा भी ध्यान हो, तो शायद बिल्कुल दूसरे तरह का व्यक्ति पैदा हो सके।
लेकिन वह लड़ रही है, क्रोध कर रही है, गालियां दे रही है। सब संघर्ष चल रहा है, सब चिंता चल रही है। इस सबके संस्कार उस छोटे से भ्रूण पर पड़ते हैं। वह सब निर्मित हो रहा है। कल वह बच्चा क्रोधी की तरह खड़ा होगा, तब यह मां सिर पीटेगी कि यह दुष्ट कहां से पैदा हो गया? यह दुष्ट और कहीं से पैदा नहीं हुआ, आपसे ही पैदा हुआ है। बाप कहेगा कि ऐसा नालायक लड़का पैदा हो गया है। लायक बाप को नालायक लड़का पैदा हो कैसे जाएगा?
जीवन के प्रथम क्षण से निर्माण शुरू हो गया है। किस क्षण में, किस भाव में, किस प्रार्थना के मन में बच्चे का गर्भाधारण हुआ है वह उसके पूरे जीवन की यात्रा का बीज शुरू हो गया है। बलात्कार से भी एक बच्चा पैदा हो सकता है, लेकिन उस बच्चे की संभावना बहुत भिन्न होगी। अत्यंत प्रेम से भी एक बच्चा पैदा हो सकता है, उसकी संभावना भिन्न होगी। और अत्यंत प्रेयरफुल मूड में, प्रार्थना से भरे हुए भी एक बच्चा पैदा हो सकता है, लेकिन उसकी संभावना और भी भिन्न होगी। कैसे बच्चा, शुरू हुई है यात्रा उसकी... फिर मां के पेट में नौ महीने, मां ने क्या किया है, उस घर में क्या हुआ है।
अभी तो मनोवैज्ञानिक परीक्षण करते हैं, तो बहुत हैरान हैं। वे तो यह कहते हैं कि मां के पेट में बच्चा है और अगर चारों तरफ लाल रंग की दीवालें पोत दी जाएं, तो बच्चा क्रोधी हो जाएगा। क्योंकि लाल रंग क्रोध को पैदा करता है। छोटे-छोटे बच्चों को हम लाल रंग के खिलौने देते हैं, वैज्ञानिक नहीं है। बच्चों को लाल रंग के खिलौने देना एकदम खतरनाक है। क्योंकि लाल रंग सब तरफ से भीतर क्रोध के परमाणुओं को सजग करता है। इसीलिए तो क्रुद्ध लोग लाल रंग को चुनते हैं। कम्युनिस्ट लाल झंडा चुनते हैं। क्रुद्ध, वह जो क्रोध का प्रतीक है वह। क्रोध है, तो उसके लिए लाल रंग चुन लेते हैं।
आप जंगल में जाते हैं, वृक्षों को देख कर मन शांत हो जाता है। वह सिर्फ हरे रंग का प्रभाव है, और कुछ भी नहीं है। लंबी हरियाली मन के सारे परमाणुओं को शांति की तरफ झुका देती है। अगर एक मां के पेट में बच्चा है, तो दीवालें लाल हों कि हरी, यह भी धार्मिक आदमी विचार करेगा कि दीवाल कैसी हो, मां कैसे कपड़े पहने, कैसा संगीत सुने।
संगीत के नाम पर तो सिवाय लड़ाई-झगड़े के और कुछ संगीत सुनने को मिलता नहीं। लड़ाई-झगड़ा चल रहा है वही संगीत है। घर में वही संगीत है। चौबीस घंटे कलह चल रही है बहुत-बहुत रूपों में। उसी का ताल, पद, जो भी है, वही कलह भी है। सितार कहो, संगीत कहो, वही कलह जो चौबीस घंटे चल रही है, वही कलह है। उस कलह के बीच बच्चा निर्मित हो रहा है। एक छोटा-छोटा और फिर मां के पेट से बच्चा आया है तो हमें ख्याल ही नहीं है कि हम क्या कर रहे हैं। अगर धार्मिक जीवन की तरफ चेतना को ले जाना हो तो अत्यंत छोटी बातों पर ध्यान रखना पड़ेगा।
मैंने सुना है, नेपोलियन छह महीने का था, झूले पर सोया हुआ है, एक जंगली बिल्ली सवार हो गई उसकी छाती पर। नौकरानी जरा बाहर चली गई होगी।
आवाज सुनी रोने की, भीतर आई। बिल्ली को हटा दिया। कोई नुकसान नहीं हुआ था।

लेकिन बिल्ली नेपोलियन की छाती पर चढ़ गई थी--छह महीने का बच्चा। आप जान कर हैरान होंगे, नेपोलियन जिंदगी भर बिल्ली से डरता रहा। शेर से नहीं डरता था, बिल्ली से डरता था। और यह जान कर आप और भी हैरान होंगे कि जिंदगी में सिर्फ एक बार नेपोलियन हारा। और जिस युद्ध में हारा, उसमें नेल्सन, उसका दुश्मन, सत्तर बिल्लियां फौज के सामने बांध कर लाया हुआ है। और जैसे ही नेपोलियन ने बिल्लियां देखीं, उसने अपने बगल के सेनापति को कहा, अब तुम सम्हाल लो, मेरी हिम्मत टूटती है। क्योंकि मैं जानता हूं, बिल्ली से डरने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन मैं अवश हूं। बिल्ली दिखती है, बस मेरा सब होश-हवाश सब खो जाता है।
राजनीतिज्ञ कहेंगे कि नेल्सन ने हराया, मनोवैज्ञानिक कहेंगे, बिल्लियों ने हराया। और सच में बिल्लियों ने ही हराया। नेल्सन की ताकत नेपोलियन को हराने की नहीं थी। छह महीने की उम्र में बिल्ली का छाती पर बैठना इतना बड़ा संस्कार ला सकता है कि सारी मनुष्य-जाति का इतिहास दूसरा हो। अगर नेपोलियन जीतता, इतिहास दूसरा होता। नेपोलियन हारा, इतिहास दूसरा हुआ। एक छोटी सी बिल्ली का एक बच्चे की छाती पर चढ़ना करोड़ों वर्षों के लिए मनुष्य-जाति के इतिहास को बदल देगा। इतनी छोटी घटना!
अगर हमें एक धार्मिक समाज पैदा करना हो, तो मां के पेट में गर्भ के क्षण से लेकर बच्चे का प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल कैसे विकसित हो, कैसी उसके आस-पास की सारी हवा हो, किस दिशा में उसकी चेतना के द्वार खोलने के लिए हम साथी बनें, और किन गलतियों से हम बचें कि हम उस पर थोप न दें, तो मुझे नहीं लगता कि पृथ्वी पर... क्यों, कौन सा कारण है कि एक अच्छी दुनिया, एक आनंद से भरा हुआ जगत पैदा न हो सके। लेकिन पुरानी भूल छोड़ देनी होगी। धर्म झूले से शुरू होता है, और पुरानी भूल कहती है कि धर्म जब कब्र में एक पैर उतर जाए तब, तब शुरू होता है। कब्र पर धर्म शुरू नहीं होता, झूले से शुरू होता है। झूले से ही शुरू करना पड़ेगा। और अगर यह हमें स्मरण में साफ-साफ हो तो हम व्यक्तित्व को विकसित होने में, चेतना को एक दिशा देने में सहयोगी हो सकते हैं। लेकिन यह तो आने वाले बच्चों की बात हुई। आप अब दुबारा फिलहाल बच्चे नहीं होने को हैं, थोड़ा वक्त लगेगा मरने के बाद, फिर हो सकते हैं। अभी आप क्या करेंगे?
आज का क्षण ही शुरुआत होनी चाहिए। यह मत सोच लेना कि अपने झूले के दिन
तो निकल गए, बात खत्म हुई, अब जब दुबारा झूला मिलेगा तब सोचेंगे। आपके लिए तो आज, अभी, यही क्षण प्रारंभ हो जाना चाहिए। जिंदगी को अगर आनंद, शांति और सत्य की तरफ ले जाना है, ले जा सकते हैं। थोड़े श्रम की जरूरत है। बिना श्रम के कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। और परमात्मा जैसी परम संपत्ति को हम सिर्फ हाथ जोड़ कर पाना चाहते हों, तो नहीं मिल सकता है। न कोई गुरु देगा, न कोई शास्त्र देगा, न कोई मंदिर-मस्जिद दे सकता है। आपको, आपको ही पाना पड़ेगा। आपको ही थोड़ा श्रम करना पड़ेगा।
उस श्रम के लिए मैंने इन चार दिनों में कुछ बातें की हैं। आपने उन बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना है, परमात्मा करे उन्हें आप इतनी ही शांति और प्रेम से कर भी सकें। क्योंकि सुनना व्यर्थ है अगर उसके पीछे कुछ किया न जा सके। प्रभु से प्रार्थना करता हूं, बल दे, संकल्प दे कि आप एक कदम, कम से कम एक कदम उठा सकें प्रभु की तरफ। और ध्यान रहे, जो एक कदम उसकी तरफ उठाता है, वह हजार कदम हमारी तरफ उठाने को हमेशा तैयार है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।
--बड़ौदा, 17 अगस्त, 1969

कहा कहूं उस देस की
दूसरा प्रवचन

अनुभूति और अभिव्यक्ति

जीवन में सभी कुछ बुद्धि के तल पर नहीं समझा जा सकता है, और ऐसा मैं मानता भी नहीं हूं कि सभी कुछ समझे जाने की कोशिश भी उचित है।
बुद्धि बहुत कुछ समझ सकती है। सीमाएं हैं बुद्धि की, और एक जगह आ जाती है, जहां आगे नहीं समझ पाती है। जहां सीमाएं आ जाती हैं वहां दो उपाय हैं, या तो हम वापस लौट जाएं, और या हम बुद्धि को छोड़ कर बुद्धि के ऊपर उठें। निश्चित ही कम्युनिकेशन का जहां तक सवाल है, वह वहीं तक संभव है, जहां
तक बुद्धि की बात है। उसके आगे बुद्धिगत, इंटेलेक्चुअल कम्युनिकेशन संभव नहीं है। लेकिन रैपर्ट संभव है। रैपर्ट बड़ी और बात है। अगर हम सहानुभूति से किसी दूसरे व्यक्ति की ऐसी बातों को भी समझने के लिए आतुर हैं, खुले हैं, जो तर्क और बुद्धि में नहीं पकड़ में आती हैं, तो शायद उस सहानुभूति के क्षण में वे बातें भी कोई झलक ला सकती हैं, और किसी तल पर संवाद, कम्युनिकेशन हो सकता है। लेकिन उस तल पर हुए संवाद के लिए न कोई तर्क है, न तर्क का कोई अर्थ है।
अब जैसे, रात मैंने सपना देखा। मैंने सपना देखा है या नहीं देखा, आपके लिए तर्कगत समझाने के लिए मेरे पास कोई उपाय नहीं है। मैं कहता हूं, मैंने सपना देखा और आप पूछ सकते हैं कि हम कैसे मानें कि आपने सपना देखा। सपना देखने का भी सपना हो सकता है। सिर्फ आपका ख्याल हो। आप वहम में हों। सुबह आपको लगता है कि आपने सपना देखा, आपने कभी न देखा हो! तो मेरे पास तर्कगत कोई उपाय नहीं है। मेरे सिर में दर्द हो, तो कोई रास्ता नहीं है कि मैं आपको समझा सकूं कि मेरे सिर में दर्द है। और दर्द है तो कैसा दर्द है! एक सहानुभूति तो समझ सकती है मेरी पीड़ा को, लेकिन फिर भी वह अनुमान ही है बाहर से। उस दर्द को समझाने का कोई बौद्धिक उपाय नहीं है।
मेरे एक शिक्षक थे... । एक मजाक मेरे ख्याल में आता है। मेरे एक शिक्षक थे, वे वर्ष शुरू होता तो पहली बार विद्यार्थियों से यह कहते थे कि मैं सिर्फ बुखार को बीमारी मानता हूं। पेट दर्द और सिर दर्द को मैं बीमारी नहीं मानता। इसलिए पेट दर्द और सिर दर्द हो तो छुट्टी नहीं मिल सकेगी, उनको मैं बीमारी मानता ही नहीं। मैं सिर्फ बुखार को बीमारी मानता हूं। उसको मैं जांच सकता हूं। तुम्हारे सिर दर्द का मुझे कोई भरोसा नहीं, तुम्हारे पेट दर्द का मुझे कोई भरोसा नहीं। इसलिए अगर हो भी तो तुम जानो, लेकिन उनके लिए छुट्टी नहीं दे सकता हूं।
जब मैं पहली दफा उनकी कक्षा में गया, तो सच में मैं भी मुसीबत में पड़ा। मैंने उनसे कहाः आप कह क्या रहे हैं! उन्होंने कहा कि मैं मानता ही नहीं सिर दर्द। और अगर है तुम्हें, तो मुझे समझाना पड़ेगा और जब तक बौद्धिक रूप से मुझे न समझा दोगे, तब तक मैं छुट्टी देने को राजी नहीं। तब मैंने समझा कि बात कठिन ही है। नहीं समझाया जा सकता कि सिर दर्द है, लेकिन फिर भी सिर दर्द है। जो नहीं समझाया जा सकता, वह इसी कारण नहीं है, ऐसा मानने का कोई उपाय नहीं है।
जैसे कि मैंने कहा कि पिछले जन्म का अनुभव। पिछले जन्म का अनुभव समझाना बहुत मुश्किल है। एक ही रास्ता है समझाने का और वह रास्ता यह है कि जिस भांति मैं पिछले जन्म के अनुभव में गया हूं, उस विधि को आपको बताऊं और शायद आप भी सफल हो जाएं। और तो कोई उपाय नहीं है। जिस भांति मेरे सिर में दर्द हुआ है दीवाल से टकरा कर तो मैं आपसे कहूं कि आप भी दीवाल से टकरा लें, तो शायद दर्द हो जाए। फिर भी पक्का नहीं है। क्योंकि सभी सिर दीवाल से टकराएं तो भी दर्द हो जाए, यह भी पक्का नहीं है।
तो इतना ही कह सकता हूं कि पिछला जन्म है, ऐसी मेरी समझ है। और इसके लिए क्या दलील हो सकती है! इसके लिए एक ही दलील मेरे पास हो सकती है, वह यह कि जिस विधि से मैं पिछले जन्म में गया हूं, वह विधि आपको कहूं।
आपको लगे कि देखना है जाकर तो आप देख लें। जरूरी नहीं है कि मेरी विधि आपको काम कर जाए। और यह भी जरूरी नहीं है कि मेरी विधि से आपको जो अनुभव हो,

वह आपको सत्य मालूम पड़े या सपना मालूम पड़े, यह भी जरूरी नहीं है। हो सकता है आपको लगे, यह भी एक सपना है, जो आंख पर आकर खुल गया!
एक महिला मेरे पास कुछ दिन तक प्रयोग कर रही थी। उसको बड़ी आतुरता थी,
जो आपने पूछा है, वही उसने मुझसे पूछा था। वह कालेज में प्रोफेसर है। उसने मुझे पूछाः और सब बातें तो ठीक हैं, लेकिन कुछ बातें आप ऐसी कह देते हैं कि बात मुश्किल में पड़ जाती है। एक तरफ आप कहते हैं कि दूसरे पर विश्वास मत करो, दूसरी तरफ आप ऐसी बात कह देते हैं कि सिवाय विश्वास के उसमें कोई उपाय नहीं! तो मेरा उससे कहना था, कि न तो मैं यह कहता हूं कि विश्वास करो; न मैं यह कहता हूं कि अविश्वास करो। इतना भी मान सकते हैं कि कुछ बातें हैं, जो यह आदमी कह रहा है, जो कि तर्क के भीतर नहीं पकड़ में आती हैं। लेकिन सभी कुछ तर्क के भीतर पकड़ में नहीं आता। मैंने उससे कहा प्रयोग करके देखो पिछले जन्म के लिए।
उस महिला ने प्रयोग करना शुरू किया। वह छह महीने सच में निष्ठा से प्रयोग की। उस प्रयोग के कोई एक दिन, रात के दो बजे वह आई और इतनी घबड़ा गई थी, इतनी परेशान थी! उसने कहाः मुझे किसी भी तरह भूल जाना है, जो मुझे दिखाई पड़ा है उसे। क्योंकि उसे ख्याल आया है कि वह पिछले जन्म में देवदासी थी किसी मंदिर में और वेश्या का काम करती थी। और जो उसे स्मरण आना शुरू हुआ, वह उसके आज के अहंकार को भी पीड़ाजनक और दुखदायी था। फिर वह मुझसे कहने लगी कि मैं यह भी चाहती हूं कि यह मुझे याद न आए, और फिर मुझे यह भी पक्का नहीं होता है कि यह सच है या यह सपना देख रही हूं!
यह भी पक्का नहीं हो सकता। इसका भी पक्का करना बहुत कठिन है कि सपना
ही तो नहीं है। लेकिन सपने और अनुभव के सत्यों की जांच करने का भी निजी, सबजेक्टिव उपाय है। रात सपने में मैं खाना खा लेता हूं, तब मुझे पता नहीं चलता कि यह सपना है या सच है। सुबह जाग कर पता चलता है कि सपना था, क्योंकि पेट तो खाली रह गया है! रात सपने में भी सिर दर्द हो और दिन में जागने में सिर दर्द हो, तो सपने में पता लगाना मुश्किल है कि जो दर्द हो रहा है, वह सच में हो रहा है या सिर्फ कल्पना है। लेकिन जागने में पता चलता है, शायद कल्पना ही थी, क्योंकि जागने पर वह दर्द कहीं भी नहीं रह गया; नींद टूटते ही खो गया है।
पुनर्जन्म के जो स्मरण हैं, वे सपने नहीं हैं, क्योंकि दो कारण हैं।
एक ही सपने में दुबारा प्रवेश असंभव है। आप एक ही सपने में दुबारा प्रवेश नहीं कर सकते। आप लाख उपाय करें तो उसी सपने को फिर ला नहीं सकते। आपके हाथ के बाहर है। वालेंटरी नहीं है। लेकिन पिछले जन्म की स्मृति में--एक ही स्मृति में लाख दफे प्रवेश कर सकते हैं। वह ठीक वैसे ही वापस दोहरती है, जैसे पहली बार दोहरी थी। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है।
यह जो मैं पिछले जन्म की बात कह रहा हूं, उसमें कम्युनिकेशन संभव नहीं है, एक्सपेरिमेंटेशन संभव है। और जब मैं वह बात कर रहा हूं, तो सिर्फ इसलिए कर रहा हूं, ताकि शायद किन्हीं को ख्याल आ जाए तो वे प्रयोग करें। मेरी इच्छा भी नहीं है कि मेरी बात आप मानें। संदिग्ध होना उचित है। और मैं तो यह भी कहता हूं कि आपको भी अनुभव हो जाए, तब भी एकदम से मान लें, वह भी उचित नहीं है। तब भी संदिग्ध होना उचित है। क्योंकि कुछ भी कहा नहीं जा सकता। मन इतना अदभुत है और इतने धोखे पैदा कर लेता है कि कुछ भी कहना मुश्किल है। लेकिन यह भी एक धोखा हो जाएगा कि हम यह कह दें कि ऐसे कोई तथ्य होते ही नहीं, जो कम्युनिकेट नहीं किए जा सकते।
तो ऐसा मैं मानता हूं कि बहुत कुछ तो संवादित हो जाता है, बहुत कुछ संवाद के बाहर रह जाता है। और जब बहुत कुछ संवादित होता है, तब भी जो शब्द कहते हैं, वही संवादित नहीं होता बल्कि शब्दों के आस-पास बहुत कुछ संवादित हो जाता है, जो कि शब्द नहीं कहते हैं। और जब हम तर्क देते हैं और जब हम तर्क से कुछ चीज समझाने की कोशिश करते हैं, तब भी जरूरी नहीं है कि हम जो तर्क से सिद्ध करने जा रहे थे, वही संवादित हो। अक्सर तो यह होता है कि अगर सहानुभूति हो, और लोगों ने बात की है, डायलॉग किया है, चर्चा की है, तो बहुत कुछ परिधि में संवादित होता है।

मेरी दृष्टि में मुझे पिछला जन्म एक सत्य मालूम पड़ता है और ऐसी भी मेरी समझ है कि पिछले जन्म के अनुभव इस जन्म के अनुभवों को प्रभावित करते हैं।
असल में कल का अनुभव अगर कल था, तो आज को प्रभावित करेगा ही। यह भी हो सकता है कि मैं कल का अनुभव भूल गया होऊं, तब भी वह आज मुझे प्रभावित करेगा। स्मरण जरूरी नहीं है प्रभावित होने के लिए।
तो वह जो मैंने कहाः संभोग के अनुभव पिछले जन्मों से भी काम करते हैं। सारे गहरे अनुभव काम करते हैं। फिर जितने गहरे अनुभव हों, उतने ज्यादा काम करते हैं। और संभोग मेरी दृष्टि में पीक एक्सपीरिएंस में से है, गहरे से गहरे अनुभव में से है। अगर वह हुआ है अनुभव, तो वह जन्मों-जन्मों प्रभाव-रेखा छोड़ेगा।
लेकिन यह मेरी बात है। और आप बिल्कुल ठीक कहते हैं कि यहां जाकर आपको लगा कि कम्युनिकेशन नहीं हुआ। नहीं होगा। क्योंकि मैं अपने अनुभव की बात कर रहा हूं। जो आपका अनुभव नहीं है। अनुभव कम्युनिकेशन के लिए जरूरी है।

प्रश्नः पर्सनली मैं बिलीफ करता हूं।

बिलीफ करने की भी बात नहीं है, पासिबिलिटी की बात ही काफी है। उतनी सहानुभूति संवाद के लिए पर्याप्त है कि हम एक दूसरे की संभावना को स्वीकार करके चलें कि ऐसा हो सकता है। इतना ही अगर है, तो संवाद हो जाएगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि आपने रिफ्यूट किया। रिफ्यूट आप नहीं कर रहे हैं। आप एक तथ्य ही कह रहे हैं। आपको वहां जाकर लगा कि यहां कोई बात हमारी पकड़ से छूट गई, जो हमारी पकड़ में नहीं आ रही है। हमारी पकड़ में भी वही आ पाता है, जो हमारा किसी तरह का समान अनुभव हो, नहीं तो पकड़ में नहीं आ पाता। अब जैसे कि आप जो यह कह रहे हैं, उसी घटना को लेकर और लोगों ने भी मुझे लिखा कि हमें संभोग का अनुभव है, लेकिन टाइमलेसनेस का नहीं। उन्होंने मुझे लिखा है कि आप जो कहते हैं कि संभोग से कालरहितता आ जाती है, कालातीत मन हो जाता है, तो हमको संभोग का अनुभव है, लेकिन हमने तो कभी ऐसा क्षण अनुभव नहीं किया, जब समय मिट गया हो। समय तो पूरी तरह बना रहा। पिछले जन्म की बात ही छोड़ दें, उनको यहीं जाकर बात अटकाव की हो गई है। और ठीक भी है, उनका अटकाव भी ठीक है। क्योंकि बहुत से लोग, असल में संभोग के नाम पर जो करते हैं, वह संभोग है ही नहीं। एक तो संभोग का एक पाजिटिव अर्थ है, और एक निगेटिव अर्थ है।
एक तो संभोग है जो आपके किसी बोझ को उतार जाता है। कहीं आपको ले नहीं जाता, कहीं पहुंचाता नहीं; किसी गहराई में किसी अनुभव को नहीं लाता। हां, एक तनाव है, एक बोझ है, एक परेशानी है, उसको निकाल जाता है। एक फिजियोलॉजिकल अर्थ है, इससे ज्यादा अर्थ नहीं है। एक बेचैनी है शरीर के तल पर, वह उससे आपको मुक्त कर जाता है। अगर ऐसा ही संभोग का अनुभव हो, तो उसमें कालरहितता का अनुभव नहीं होगा। और तब फिर बात कम्युनिकेट नहीं होगी, क्योंकि इससे लगेगा कि टाइमलेसनेस जैसी कोई चीज मालूम नहीं पड़ती, न ईगोलेसनेस जैसी कोई चीज मालूम पड़ती है। तब इसका मतलब यह हुआ कि... मेरी तरफ से मतलब यह हुआ कि संभोग का अनुभव ही नहीं हुआ।
असल में वीर्य-स्खलन संभोग नहीं है। और उस स्खलन के कितने भी उपाय हम खोज लें, उससे संभोग का कोई सीधा संबंध नहीं है। संभोग तो एक मनोदशा है, दो व्यक्तियों के इतने तीव्र आतुर मिलन की अवस्था है, जहां कि उनकी सारी सीमाएं खो गई हैं, सारा व्यक्तित्व खो गया है। जहां कि उनका अपने होने का बोध जो है, वह भी चला गया। और किसी बड़े बोध में वे दोनों समाविष्ट हो गए हैं, बड़े वृत्त में समाविष्ट हो गए हैं। जिसमें दो इकाइयां नहीं हैं, अब एक ही इकाई है। ऐसी प्रतीति का अगर अनुभव हो सके, तो ही समयमुक्तता और अहंकारमुक्तता का अनुभव होगा।
लेकिन यह भी कम्युनिकेट नहीं हो पाएगा। और कम्युनिकेशन की कठिनाइयां
तो बहुत ही हैं। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि जैसे ही हम शब्द में कहते हैं, वैसे ही जो कहना चाहते हैं, वह ठीक-ठीक उतर नहीं पाता। फिर जब हम सुनते हैं,

तो जो हम सुनते हैं, वह वही नहीं होता है, जो कहा गया होता है। क्योंकि हम वही सुन सकते हैं जो हम सुन सकते हैं। बस, फासले पड़ने शुरू हो जाते हैं। अब यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि शब्द के अतिरिक्त कोई माध्यम नहीं है और शब्द से विकारग्रस्त कोई माध्यम नहीं है। कोई उपाय नहीं है। शब्द से ही कहना पड़ेगा और शब्द से कुछ भी नहीं कहा जा पाता है, तो अंधेरे में टटोलते रह जाते हैं।
कम्युनिकेशन बड़े से बड़ा प्रॉब्लम है। और दो आदमियों के बीच, दो व्यक्तियों के बीच, शायद प्रेम के क्षण में तो कोई चीज संवादित हो जाती है, बातचीत में संवादित नहीं हो पाती है। और जब हम बोल रहे हैं, तब उस क्षण में प्रेम की मनोदशा खोजनी बड़ी मुश्किल हो जाती है।
पर मेरा अपना ख्याल यह है कि जब भी मैं बोल रहा हूं, तो किसी न किसी अर्थ में बोलना आक्रमण है। आपके ऊपर हमला कर रहा हूं और जाने-अनजाने आप डिफेंस की हालत में भीतर कुछ इंतजाम कर लेते हैं और सुरक्षा की तैयारी कर लेते हैं, तब बातचीत चलती रहती है। और उसमें बराबर एक संघर्ष बन जाता है बजाय संवाद के। और जहां संवाद की स्थिति होती है, जैसे प्रेम के क्षण में कि मैं किसी को प्रेम करता हूं और उसके पास बैठा हूं, जहां कि कोई आक्रमण नहीं है, कोई सुरक्षा का सवाल नहीं है, तो वहां शब्द खो जाते हैं, क्योंकि प्रेम इतना महत्वपूर्ण मालूम प.ड़ता है कि बोलने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जहां संवाद होता है, वहां बोलना खो जाता है। जहां बोलना होता है, वहां संवाद की संभावना कम हो जाती है। यह कठिनाई है। अब दो प्रेमी संवादित हो सकते हैं, लेकिन बोलते न रहें, चुप हो जाएं। तो दो जन बोलते हैं, बोलने की चेष्टा करते हैं, समझने की, सुनने की चेष्टा, समझाने की भी चेष्टा करते हैं, लेकिन प्रेमी नहीं होते।
हमारी पुरानी जो धारणा थी, वह मुझे मूल्यवान मालूम पड़ती है। गलत शब्द
दे दिया था इसलिए वह गड़बड़ हो गई है। हम इस देश में मानते थे कि श्रद्धा के बिना समझना नहीं हो सकता। श्रद्धा शब्द जरा गलत हो गया, गलत यात्रा ले ली उसने। लेकिन श्रद्धा का मतलब मेरी दृष्टि में कुल इतना ही होता है कि ऐसे क्षण में जब कि हम बड़े प्रेम से भरे हुए हैं, जबकि समझने की आतुरता कम और प्रेम का भाव ज्यादा है, तब शायद संवाद हो सकता है। क्योंकि तब कोई आक्रामक नहीं है और कोई डिफेंस में नहीं है। लेकिन आप जब एक शब्द उपयोग करते हैं, तो बहुत बढ़िया है, आप कहते हैं इंटलेक्चुअल है। और इंटलेक्ट बहुत छुईमुई है, वह पूरे वक्त सजग है सुरक्षा के लिए। कोई हमला न हो जाए! और उसका काम भी यही है, होना जरूरी भी है। बुद्धि का मतलब यह है कि वह अपनी सुरक्षा करे सब तरफ से। तो वह बहुत सुरक्षा की तैयारी में है, फिकर है कि कोई हमला न हो। और सबसे बड़ा डर उसे यह है कि उससे विजातीय कोई विचार उसके भीतर न चला जाए। जो उसकी अब तक की मान्यता है, समझ है, एक लय है, एक हार्मनी है, उसमें एक विजातीय बात चली जाए भीतर तो उपद्रव खड़ा होगा, परेशानी होगी और किसी तरह का रास्ता खोज लेना पड़ेगा।

प्रश्नः बुद्ध होने की तैयारी बुद्धि के बिना कैसे होगी?

इसमें फर्क है। शब्द की बहुत गहराई में जाएं प्राचीन से प्राचीन, तो वही मतलब है। लेकिन बुद्ध होने में और बुद्धिमान होने में बड़ा फर्क है। बुद्ध से हम मतलब लेते हैं प्रबुद्ध होने का, एनलाइटेन्ड होने का, जागे हुए होने का। बुद्धि से मतलब लेते हैं सोच-विचार का। और मजा यह है कि इन दोनों बातों में बड़ा विरोध है। जितना जागा हुआ आदमी होगा, उतना कम सोच-विचार करता है। जितना कम जागा हुआ आदमी होगा, उतना ज्यादा सोच-विचार करता है। असल में सोच-विचार सब्स्टिट्यूट है जागे होने का।
एक अंधा आदमी है, उसको इस कमरे के बाहर जाना है तो वह सोचता है, दरवाजा कहां है, रास्ता कहां है, पूछता है। उठने के पहले पच्चीस दफे सोचता है, कहीं टकरा न जाऊं। एक आंख वाला है, वह उठता है और निकल जाता है। वह सोचता ही नहीं कि दरवाजा कहां है। वह पूछता ही नहीं कि दरवाजा कहां है। वह जो अंधा आदमी है उसके लिए पूछना, सोचना, खोजना, सब करना पड़ता है। वह आंख न होने की

वजह से ये सारे काम करने पड़ते हैं। आंख वाले आदमी से तो आप पूछिएगा कि दरवाजा कहां है, तब वह बताएगा। निकलते वक्त उसको पता ही है, वह दरवाजे से निकल जाएगा। वह निकल ही गया है और उसने न सोचा कि यह दरवाजा है, न फिकर की, न किसी से पूछा है। बस निकल गया है। निकल जाना इतना सहज हुआ है कि उसको कहीं सोच-विचार नहीं आया।
जिस अर्थ में "बुद्ध" शब्द का प्रयोग करते हैं, वहां विचार नहीं है वह। वहां उसका मतलब है ऐसा व्यक्ति जो देख रहा है और निकल गया है देखने से। जहां हम "बुद्धि" का उपयोग करते हैं, वहां बड़ी और बात है। वहां हम यह कह रहे हैं, जहां हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है, लेकिन हम सोच-सोच कर, टटोल-टटोल कर निकलने की कोशिश कर रहे हैं। जो देखने वाला कर सका है बिना सोचे-विचारे, वह हम सोच-विचार कर करने की कोशिश कर रहे हैं।
तो ऐसा हो सकता है, बुद्ध तो जाग कर बुद्ध होते हैं, उनके पीछे जो अनुयायी होता है, वह सोच-विचार से होता है। वह सब सोच-विचार कर तैयारी करता है। उसी ढंग का खाना खाता है। उसी ढंग के कप.ड़े पहनता है। वैसे ही चलता है, बैठता है, उठता है। वह पूछता है बुद्ध से कि कैसे उठते हो, कैसे बैठते हो, कैसे सोते हो! वह वैसा ही करता है। वह सब कर लेता है, फिर भी पाता है कि वह बात नहीं घटी। वह घट भी नहीं सकती, क्योंकि वह जो प्रबुद्ध होना है, वह बुद्धि का जोड़ नहीं है।
असल में प्रबुद्ध होना एक अर्थ में बुद्धि का पूरी तरह असफल होकर टूट जाना है। यानी वह उस क्षण में घटित होगा, जब बुद्धि ने असमर्थता पा ली है अपनी और खोज-बीन करके उस जगह आ गई है, जहां वह थक गई है और जहां उसने कहा है कि आगे हमारी कोई गति नहीं है और सब व्यर्थ हो गया है। कुछ खोजने को बचा नहीं; खोज सकते नहीं। सब टूट गया।
बुद्धि की जो परिपूर्ण असफलता है, वही प्रबुद्ध होने की पहली संभावना है। जहां सब सोच-विचार थक गया, और उसने कहाः नहीं कुछ होता है। जहां फिलासफी हार गई है, टूट गई है और गिर गई है, वहां रिलीजन शुरू, और वहां धर्म प्रारंभ होता है।
इसलिए शब्द से जो आप कहते हैं... ठीक ही कहते हैं कि बुद्ध और बुद्धि में एक ही शब्द प्रयोग हुए हैं, लेकिन अलग भाव से प्रयुक्त हुए हैं। बुद्ध को बुद्धिमान आदमी नहीं कह सकते। बुद्ध को प्रबुद्ध ही कह सकते हैं। ऐसा आदमी जो जाग गया, अब बुद्धि का जिसे सवाल ही नहीं रह गया।
तो वह जो मैं कह रहा था कि जब हम कहते हैं, इंटलेक्चुअल कम्युनिकेशन,
तब और बड़ा मुश्किल हो जाता है मामला। मेरे ख्याल से बौद्धिक-संवाद जैसी चीज तो असंभव है। असंभव ही है। इसलिए असंभव है कि बुद्धि का जो काम है, वह संवाद नहीं है। बुद्धि का जो काम है, वह विवाद है। यानी बुद्धि का जो मौलिक काम है, वह विवाद का है, संवाद का नहीं है। और इसलिए जहां हम संवाद में होते हैं, वहां अक्सर हम हृदय की बातें करने लगते हैं, बुद्धि की बात तत्काल छोड़ देते हैं। और उसका और कोई कारण नहीं है। हम किसी को प्रेम करते हैं, तो यह नहीं कहते हैं कि मैं बौद्धिक रूप से प्रेम करता हूं। उसका कोई मतलब ही नहीं होता--"बौद्धिक रूप से।" तो मैं कहता हूं, उसमें बुद्धि का कुछ लेना- देना नहीं है, हृदय से प्रेम करता हूं। हृदय जैसी कोई चीज होती नहीं है कहीं शरीर में। हम कह रहे हैं कि यहां बुद्धि का कुछ लेना-देना नहीं है। एक बहुत अच्छी घटना घटी है। मजनू को उसके गांव के राजा ने बुला लिया
है और उससे कहा कि तू बिल्कुल पागल हो गया है लैला के लिए। इतनी साधारण लड़की, इतना दीवाना क्यों है? कुछ तो सोच, कुछ तो समझ! तो मजनू ने कहाः अगर सोच-समझ ही सकता, तो जो आप कहते हैं, वही मैं भी कहता। वही तो तकलीफ हो गई कि सोच-समझ नहीं पा रहा हूं। उस राजा ने कहाः मैं और अच्छी लड़कियां बुला देता हूं। मेरे महल में लड़कियां हैं, तू उनको देख। एक से एक सुंदर लड़कियां हैं। उसने कहाः मैं सबको देखूंगा, लेकिन लैला मुझे दिखाई न पड़ेगी। क्योंकि जो उन लड़कियों को देखेगा, उससे मैंने लैला को नहीं देखा। जिससे मैंने लैला को देखा, उससे अब मैं किसी लड़की को देख नहीं सकता। उपाय ही नहीं है कोई। राजा ने कहाः तू बिल्कुल मूढ़ है। उसने कहाः ऐसा ही कहें। अगर मूढ़ न होता, तो जो आप कहते हैं, वही मैं भी कहता। आप जो कहते हैं, बिल्कुल ठीक कहते हैं। जहां

तक बुद्धि की बात है, आप ठीक ही कहते हैं। मैं ही गलत हूं। लेकिन बुद्धि से मैंने प्रेम किया नहीं। और मैं पूछता हूं कि बुद्धि से कब प्रेम किया गया है? जवाब तो नहीं दे सका राजा। अब भी हम नहीं दे सकते जवाब कि बुद्धि से कब प्रेम किया गया है!
असल में, अगर हम ठीक से देखें, तो हमारी बुद्धि का भी सारा विकास जीवन
के संघर्ष से पैदा हुआ है। एक इंस्टमेंट की तरह हमने जीवन के संघर्ष में उसका उपयोग किया है, जीवन की लड़ाई में उपयोग किया है। वह जो सर्वाइवल की जो लड़ाई चल रही है, उसमें बुद्धि ने हमें काम दिया है। शायद इसीलिए आदमी बच गया और जानवर हार गए।
जहां लड़ाई का संबंध है, वहां तो बुद्धि बड़ी उपयोगी होती है। और जहां प्रेम का संबंध है, वहां बुद्धि एकदम बेकार है। इसलिए परमात्मा से बुद्धि का नाता जोड़ना, सत्य से बुद्धि का नाता जोड़ना जरा कठिन है। लड़ाई करनी हो, हिंसा करनी हो, बम बनाना हो, तो बुद्धि का काम हो जाता है।
तो संवाद जो है, वह एक तरह की लड़ाई नहीं है, बल्कि लड़ाई से हट जाना है।
और हम कहते हैं कि बौद्धिक-संवाद, तब कंट्राडिक्ट्री हैं वे दोनों शब्द।
संवाद और बौद्धिक का कोई मतलब नहीं है।
लेकिन इसका मतलब नहीं है कि हम बुद्धि को खो दें, तब संवाद होगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि हम अबुद्धिमान हो जाएं, या हम मूढ़ होकर, अंधे होकर बैठ जाएं तो संवाद होगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जो न कहा जा सकता हो, उसे न ही कहा जाए। लेकिन यह भी कहना हो गया। यू हैव असर्टेड इट। अगर मैं यह कहूं कि परमात्मा को नहीं कहा जा सकता, तो हमने काफी कह दिया। जो कहा जा सकता था, वह कह ही दिया!
हमारी कठिनाई यह है कि हमारे पास सिवाय भाषा के कोई उपाय नहीं है। यानी मामला ऐसा है कि मेरे हाथ में तलवार है और उसी से मुझे आपका आलिंगन करना है। यह बड़ी मुसीबत की बात है। आलिंगन करना है, और है तलवार हाथ में और कोई हाथ नहीं है मेरे पास। प्रेम करना है आपसे और गले मिलना है आपसे, तलवार ही मेरे पास है। यह तलवार की वजह से गला कटने का डर है, और तलवार के सिवाय मेरे पास कोई उपाय नहीं है।
आदमी की सारी तकलीफ यह है कि उसके पास कहने को शब्द हैं, बताने को तर्क हैं, उपयोग करने के लिए बुद्धि है। और ये तीनों के तीनों बिल्कुल बेमानी हैं किसी अर्थ में। कुछ है, जहां ये सब बेमानी हैं। अब वह विटगिंस्टीन की सारी जिंदगी की तकलीफ यह है। और उसकी तकलीफ नहीं समझी जा सकी थी। नहीं समझी जा सकी, इसलिए कि वह तो एकाध ही दो वाक्य में कहा उसने। यह तो कभी वह कहता है कि जो न कहा जा सके, उस संबंध में चुप रहना उचित है। और फिर बाकी में तो वह सब भाषा का ही खंडन कर रहा है कि नहीं कहा जा सकता है। उसकी बड़ी किताबों में एकाध दो वाक्य ऐसे खो जाते हैं कि उनकी कोई फिकर ही नहीं है। लेकिन वही महत्वपूर्ण है। बाकी सब बेमानी है। जहां वह यह कह रहा है कि कुछ है, जो नहीं कहा जा सकता, लेकिन फिर भी कहने की इच्छा तो है, इशारा करने की इच्छा भी है। और उसे शब्द से ही कहना पड़ेगा। इसका रास्ता क्या निकले? रास्ता एक ही है कि हम शब्द का उपयोग करें और शब्द की निरर्थकता को जानते हुए उपयोग करें।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

असल में अगर हम ठीक से देखें, तो सारी कलाएं जैसे-जैसे सत्य को बताने
की दिशा में आगे बढ़ी हैं, वैसे-वैसे सत्य को बताने में तो समर्थ न होंगी, जो कुछ बता पा रही थीं, उसको भी बताने में असमर्थ हो जाएंगी। वैसा ही हुआ है, हो रहा है। नई मूर्ति है, या नई पेंटिंग है, नई कविता है, या नया संगीत है। चेष्टा है इस बात की कि वह जो फार्म बाधा डालता है, वह जो आकार और आकृति, और वह जो मीडियम बाधा डालता है, उससे हम मुक्त होकर इतना ट्रांसपेरेंट हो

सकें कि वह बाधा न डाले, बल्कि मार्ग बन जाए। लेकिन परिणाम क्या होता है? परिणाम यह होता है कि वह बाधा डालता था, अगर उससे हम मुक्त होने की कोशिश करते हैं, तो हम मुक्त तो हो जाते हैं, लेकिन तब वह ट्रांसपेरेंसी ही रह जाती है। उससे कुछ आगे आरपार कुछ दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि वह जो दिखाई पड़ता था, वह आकार ही था।
मैं इस तरह के शब्दों का उपयोग कर सकता हूं, जो बाधा न डालें। मगर वे शब्द सब अर्थहीन होंगे। "ओम" जैसे शब्द होंगे वे। या "कोकाकोला" जैसे शब्द होंगे, जिसका कोई मतलब नहीं होगा। अब जैसे "ओम" है। अब इसका कोई मतलब नहीं है। यह हमने बहुत पहले इसका प्रयोग किया है, इसीलिए कि अर्थहीन है। इसका उपयोग करो, क्योंकि जितने अर्थवान शब्द हैं, सब उपयोग करके झंझट में डाल देते हैं, और फिर भी झंझट नहीं सुलझती। अब यह ओम है, इसका उच्चारण कर दो, इसका कोई अर्थ नहीं। इससे कुछ इंगित नहीं होता। और इससे हम यह इंगित कर रहे हैं कि कुछ है, जो शब्द के बाहर है, उसके लिए हमने यह शब्द चुना। ओम से क्या फर्क पड़ता है, कितने ही ओम कहें, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। उसका भी इंगित कहीं नहीं हो पाता।

प्रश्नः लेकिन मंत्र-शास्त्री आपकी व्याख्या को मान्य नहीं करेंगे?

वह मंत्र-शास्त्री से बात करनी चाहिए। मैं तो यहां यह कह रहा हूं कि
नई कलाएं इस तरह के उपयोग कर रही हैं जो एब्सर्ड हैं। इस तरह की मूर्तियां बन रही हैं, जिनको आप किसी की मूर्ति नहीं कह सकते। अगर आदमियत की मूर्ति बनानी है तो ऐसी बनानी पड़ेगी, जिसमें किसी का चेहरा न आए, क्योंकि किसी का भी आ जाएगा, तो वह किसी का हो जाएगा, आदमी का नहीं रह जाएगा। अब आदमियत की अगर मूर्ति बनानी हो, तो उसमें मेरा चेहरा नहीं होना चाहिए, उसमें आपका चेहरा नहीं होना चाहिए, उसमें किसी का चेहरा नहीं होना चाहिए। उसमें कोई पर्टिकुलर चेहरा हुआ, तो वह आदमी का हो जाएगा, आदमियत का न रह जाएगा। तब हम एक ऐसी मूर्ति बनाएं, जिसमें किसी का चेहरा न हो। बन जाएगी ऐसी मूर्ति। लेकिन हम सोचते थे, वह आदमियत की बन जाएगी। वह एक आदमी की भी न रह जाएगी। जो मैं कह रहा हूं, कि आदमियत की तो बनेगी नहीं वह, वह जो एक आदमी की बन सकती थी, वह भी नहीं बनेगी अब। वह वहां से भी विदा हो जाएगी। वह फेसलेस हो जाएगी। आदमियत की बनाने में सिर्फ चेहरा खो जाएगा। और ऐसा ही हुआ है। इसलिए नई कला के सारे के सारे प्रयोग फेसलेसनेस की तरह हैं, सब चेहरे खो गए हैं वहां से। और तब हमारी समझ के बाहर हो गया है। जो कुछ लोग कहते हैं कि हमारी समझ में आ रहा है, वह या तो फैशन की वजह से कहते हैं, या वे इस वजह से कहते हैं कि नहीं तो बुद्धिहीन मालूम पड़ेंगे। बाकी नई कला के सारे आयाम, सारे डाइमेंशन ऐसे हैं कि वे आपको समझ में नहीं आ रहे हैं। न आना चाहिए। कोशिश यह है कि समझ में आ गए, तो अर्थ पकड़ में आ गया। और अर्थ अगर पकड़ में आ गया, तो आकार पकड़ में आ गया। तो फार्म हो गया, बात खत्म हो गई।
नहीं। समझ में नहीं आ रहा है, यही तो सारी चेष्टा है कि समझ में आपके न
आ जाए। लेकिन समझ में आने वाले शब्द से भी नहीं बता पाते थे, न समझ में आने वाले शब्द से क्या बता पाएंगे? यानी मैं यह कह रहा हूं कि जब समझ में आने वाला शब्द ही नहीं बता पाया, तो समझ में न आने वाला शब्द भी न बता पाएगा। इसका मेरा क्या मतलब है? मेरा मतलब यह है कि यदि हमें बुद्धि की पूरी
की पूरी असमर्थता का बोध हो जाए, उसमें जरा भी आशा न रह जाए... । होपिंग अगेंस्ट होप चल रही है बहुत दिनों से। तो वह चलती जाती है। कुछ लोग छिटक जाते हैं रास्ते के किनारे और वे कह देते हैं कि होपलेस हो गया मामला, उनकी बात अलग है। लेकिन आमतौर से हम आशा बांधे चले जाते हैं कि कोई रास्ता खोज लेंगे। अगर कालिदास नहीं खोज पाए, तो इजरा खोज लेंगे। अगर हमारे मूर्तिकार पुराने नहीं खोज पाए तो पिकासो खोज लेगा। हम इस कोशिश में लगे हैं कि कोई न कोई रास्ता खोज लेंगे कि जो न कहे जाने जैसा है, वह कह देंगे। मैं यह कह रहा हूं कि जिस दिन किसी व्यक्ति को यह समझ में आ जाता है कि
यह मामला ऐज सच एब्सर्ड है, यानी यह सवाल नहीं है कि हम और किसी तरकीब से कह देंगे। सवाल यह है कि कहा ही नहीं जा सकता। यह सवाल नहीं है कि हम कोई और

अच्छा शब्द खोज लेंगे; अच्छी आकृति, अच्छी कविता, अच्छी पेंटिंग--यह सवाल नहीं है। जो है वह कहे जाने योग्य ही नहीं है। ऐसा नहीं है कि आज तक नहीं कहा गया, आगे कहा जा सकेगा। नहीं, कहा ही नहीं जा सकता। वह जो रियलिटी जिसको आप कह रहे हैं, वह कही नहीं जा सकती। उसका मतलब यह है कि वह सिर्फ जानी जा सकती है। और तब जानने और कहने के फर्क के फासले को समझ लेना उपयोगी होगा।
वह जो नहीं कहा जा सकता, वह भी जाना जा सकता है। हमारी क्या तकलीफ है?
हम इस कोशिश में लगे हैं कि जो जाना जा सकता है, वह कहा भी जाना चाहिए। जैसे बुद्ध कहते हैं कि मैंने जाना निर्वाण। तो हम यह पूछते हैं कि "कहो, क्या है निर्वाण!" एक आदमी कहता है, हमने ईश्वर को जाना। तो हम पूछते हैं, "बोलो फिर, क्या है ईश्वर?" अगर वह नहीं बोल पाता, तो हम हंसते हैं। हम कहते हैं, "फिर जाना ही नहीं होगा। क्योंकि अगर जाना है, तो बोलो। और अगर नहीं बोल सकते हो, तो स्वीकार कर लो कि नहीं जाना है। क्योंकि जो जाना गया है, वह बोला क्यों नहीं जा सकता है!"
यह बात जरूर सच है कि एक मानवीय जरूरत है--एक बुनियादी जरूरत है कि जो हमने जाना है, वह हम कहना चाहते हैं। क्योंकि जो हमने जाना, हम उसमें दूसरों को साझीदार बनाना चाहते हैं, भागीदार बनाना चाहते हैं। अगर मैं घर के पीछे गया और मैंने वहां एक फूल खिला देखा, जिससे मैं नाचने लगा और आनंदित हो गया, तो मैं लौट कर घर के मित्रों को कह देना चाहता हूं कि पीछे फूल खिला है और बहुत आनंदित हूं। यानी आनंद का एक हिस्सा बांटना भी है। आनंद का ही।
दुख का एक हिस्सा न बांटना भी है। अगर मैं दुखी हूं, तो मैं दरवाजा बंद करके कमरे के एक कोने में बैठ जाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं, कोई न आए।
दुख सिकोड़ देता है। और अगर मैं आनंदित हुआ हूं, तो मैं बांट देना चाहता हूं, फैल जाना चाहता हूं, और दस लोगों को खबर देना चाहता हूं।
यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि जो आदमी जाने, वह उसे कहने जाए। वह उसकी
एक बेसिक जरूरत है, लेकिन हमारी सब जरूरतें जरूरी नहीं हैं कि पूरी हों। हमारी बुनियादी जरूरतें भी पूरी हों, यह भी जरूरी नहीं है।
हम जानते हैं और हम कहना भी चाहते हैं और कहने की कोशिश में हम सिंबल्स भी खोजते हैं, क्योंकि बिना उसके तो कोई उपाय नहीं है कहने का। हम सिंबल्स खोजते हैं। सिंबल्स या प्रतीक जो हैं, वे हमारी चेष्टा हैं बताने की, जो हमने जाना। लेकिन हमारी चेष्टा सफल नहीं हो पाती। कला असफल है, काव्य असफल है, मूर्ति असफल है, सब असफल है। और जितना बड़ा मूर्तिकार होगा, उतनी असफलता अनुभव करेगा। और जितना बड़ा कवि होगा, उतनी असफलता अनुभव करेगा। और जितना बड़ा संत होगा, उतनी असफलता अनुभव करेगा। छोटा होगा, तो उतनी असफलता अनुभव नहीं करेगा।
अगर उधार अनुभव को दोहराना है, तो बराबर शब्द कह सकते हैं। लेकिन आपका कोई अनुभव हुआ है, तो आप पहली दफे पाएंगे कि कोई शब्द ही नहीं है, क्योंकि वह अनुभव आपका है। और आप पहली दफा हुए हैं जमीन पर और कोई शब्द नहीं है, क्योंकि आप जैसा अनुभव किसी को कभी नहीं हुआ है। हां, अगर कोई उधार अनुभव हुआ है, अगर स्त्री के चेहरे में आपको भी चांद दिखा है, तो कालिदास से लेकर सब उसको कहते रहे हैं चांद। आप भी एक कविता बना सकते हैं, जिसमें स्त्री के चेहरे में चांद दिख जाए। लेकिन यह अनुभव बहुत उधार और बासा और सेकेंड हैंड है। हजार हाथ से गुजरा हुआ अनुभव है। और आप कह पाते हैं और दूसरा भी समझ पाता है। क्योंकि वह सबका अनुभव है।
लेकिन जितना अनुभव निजी होता जाएगा... । जितना गहरा होगा, उतना निजी होगा। और परमात्मा का अनुभव चूंकि आत्यंतिक चरम अनुभव है, उससे गहरा कोई अनुभव नहीं है, वह नितांत निजी है। वह पहली दफा आपको ही हो रहा है। आपको जैसा हुआ, वैसा पहले कभी किसी को नहीं हुआ। उस गहराई में आप कोई शब्द नहीं पाते और कोई सिंबल नहीं पाते; बनाने की कोशिश करते हैं। जब आप बनाने की कोशिश करते हैं, तभी उपद्र्रव शुरू होता है। क्योंकि आप कहते हैं, समझा कुछ जाता है। आप बताते कुछ हैं, सुना कुछ जाता है। और तब एक उपद्रव शुरू हो जाता है, जो हजारों साल तक चलता है।

जैसे कृष्ण की गीता है। अब टीका चल रही है उसकी। इसका मतलब यह है कि जो उन्होंने कहा था, वह अभी तक नहीं समझा गया। नहीं तो टीका की अब कोई जरूरत नहीं है। एक हजार टीकाएं लिखी जा चुकी हैं और अभी टीकाएं लिखे जा रहे हैं लोग! यानी मामला यह है कि वह आदमी जो बेचारा बोला था वह अभी तक उपद्रव में पड़ा है कि वह क्या बोला था। उस पर टीका चल रही है कि वह यह बोला था। वह यह बोला था। गांधी कहते हैं, यह बोला। तिलक कहते हैं, यह बोला। शंकर यह कहते हैं। विनोबा यह कहते हैं। हजारों लोग बता रहे हैं कि वह क्या बोला। और मजा यह है कि जब वही बोला और हम न समझ पाए, तो विनोबा या तिलक या गांधी के कहने से हम क्या समझेंगे? अब उन पर टीकाएं चलेंगी। फिर तिलक बोले, उसका क्या मतलब है? और इसका कोई अंत नहीं है। यह बिल्कुल इनफिनिट रिग्रेशन है। इसका कोई अंत नहीं कि इसका हम कहां अंत कहें!
फिर भी शब्द से ज्यादा गहराई में दूसरे सिंबल्स पहुंचते हैं। ऐसा हो सकता है कि मैं शब्द में आपसे एक बात न कह पाऊं, लेकिन उठूं आपको गले से लगा लूं और कोई बात कह दूं। क्योंकि शरीर जो है, स्पर्श जो है, वह शब्द से बहुत पुराना है। शब्द तो बहुत बाद की चीज है। और मेरे शब्द और आपके शब्द अलग हो सकते हैं, लेकिन मेरे शरीर का स्पर्श अलग नहीं हो सकता है। यह हो सकता है कि जो मैं शब्द में न कह सकूं, उठाऊं एक तंबूरा और नाचने लगूं। और यह कहना चाहूं कि मैं बहुत खुश हूं और न कह पाऊं। क्योंकि आप पूछें, "खुशी यानी क्या? खुशी कैसी है आपको?" तो मैं नाचूं और शायद मेरे नाचने से खुशी की झलक मिल जाए। लेकिन फिर भी ये सिंबल्स ही हैं। फिर भी वह नहीं कह पाता हूं, जो मैं कहना चाह रहा हूं। नाच कर जब मैं थक जाऊंगा, आपकी तरफ देखूंगा और आपकी ताली सुनूंगा। तो मैं समझूंगा कि आप कुछ समझे। मेरे व्यायाम का थोड़ा सा फल हुआ। लेकिन जो मैं कहना चाहता था, वह नहीं पहुंचा। मैं शायद उदास चला जाऊंगा। वह नहीं पहुंचाया जा सका, वह जो कहना था।
नाच से भी, कला से भी, चित्र से भी कुछ कहने की कोशिश की गई है। सब तरफ कोशिश की गई है। मैं यह कह रहा हूं कि सिंबल्स से कहने की कोशिश की गई है, लेकिन सिंबल असफल हो गए हैं, यह हमें अब तक पूरा बोध नहीं हो पाया, और सब सिंबल असफल हो गए हैं और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सिर्फ असफल ये सिंबल हो गए हैं। मैं कहता हूं, सिंबल ऐज सच, असफल होने को बाध्य हैं। उसका कारण यह है कि सिंबल रियलिटी तो नहीं है, कुछ और है।
मैंने एक सूरज को उगते देखा सुबह और मैं आनंद से भर गया। फिर मैंने एक चित्र बनाया, रेखाएं खींचीं, एक सूरज बनाया, एक पेंटिंग बना कर लाकर आपको दिखाई और आपसे कहा कि बड़ा ही आनंद आया। आपने देखा, आपने कहा, हां ठीक है। और रख दी। क्योंकि आखिर रेखाएं रेखाएं हैं, सूरज नहीं है। और रंग रंग हैं, सूरज के रंग नहीं हैं। और मैंने कितनी ही कोशिश की तब भी एक छोटे से कागज पर जो खींच लाया हूं, वह हजार मील दूर की ध्वनि है। क्योंकि वह बात नहीं है, जो वहां थी।
कितना ही सफल हो जाए सिंबल, वह रियलिटी तो नहीं बनता है, वह सूरज नहीं
बन जाएगा। यानी सिंबल इसलिए असफल होने को बाध्य है कि मेरी पेंटिंग कभी भी सूरज नहीं बन पाएगी, वह सूरज नहीं बन सकती। हां, लेकिन एक खतरा है सिंबल के साथ और वह खतरा यह है कि हो सकता है कि आप कभी घर के बाहर ही न निकलें, क्योंकि आप समझें कि पेंटिंग घर में लटकी है, तो सूरज घर में लटका है! बाहर जाने की जरूरत क्या है? तो घर में तो सूरज लटका हुआ है और आप उसी पेंटिंग से उलझे रह जाएं और सूरज को कभी न जान पाएं।
सिंबल ने अब तक तो कम्युनिकेट किया नहीं, लेकिन हिंड्रेंस डाली है। गीता पकड़े बैठा है, क्योंकि सूरज घर का, किताब वाला सूरज है। अपने घर बैठा है। कुरान पकड़े बैठा है! कोई महावीर को, कोई बुद्ध को पकड़े बैठा है। ये सब लोग सिंबल थे, क्योंकि महावीर हमारे लिए क्या हैं--सिर्फ सिंबल। जो बोले, वही रह गया है हमारे पास। कृष्ण हमारे लिए क्या हैं, वे जो बोले उसके सिवाय? अगर कृष्ण का बोला हुआ खो जाए तो कृष्ण खो जाएं। न मालूम कितने कृष्ण खो गए, जो कि नहीं बोले। या बोले और फिर नहीं पकड़ा जा सका इसलिए खो गए।

सिंबल पकड़ा जाता है, यानी जिन्होंने कोशिश की थी, उन्होंने तो चाहा था
कि इस प्रतीक के द्वारा आपको तो कुछ कह देंगे और कठिनाई ऐसी हो गई कि अगर आज वे जिंदा होकर वापस लौट सकें, तो पहला काम यह करें कि आपसे गीता कैसे छुड़ा लें। अगर कृष्ण लौट सकें, तो पहला काम यह करेंगे कि गीता को इकट्ठा करके आग कैसे लगा दें। क्योंकि सोचा तो था कि कुछ कह देंगे। कुछ कह तो न पाए, और ये लोग जा सकते थे खुद भी खोजने, वह भी ये नहीं गए, क्योंकि इन्होंने समझा कि हमें गीता उपलब्ध हो गई है, किताब हमारे पास है!
कला असफल हो गई है, दर्शन असफल हो गया है, शास्त्र असफल हो गए हैं, गुरु असफल हो गए हैं और असफलता का कारण यह है कि सत्य को प्रतीक कभी बनाया ही नहीं जा सकता। सत्य सत्य है और आपको जानना है, तो आपको आमने-सामने खड़ा होना पड़ेगा, बीच में प्रतीक लेने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन कम्युनिकेशन में प्रतीक आ जाता है, इसलिए कम्युनिकेशन और रियलाइजेशन अलग-अलग बातें हैं। बस, कम्युनिकेशन एक काम भर अगर कर दे, जो मेरी समझ है... ।
आप मुझसे पूछ सकते हैं कि मैं क्यों मेहनत कर रहा हूं, जब मैं मानता हूं कि अल्टिमेटली एब्सर्ड है? बोल कर कुछ कहा नहीं जा सकता, तो मैं फिर क्यों बोलता हूं? तो मेरा कुल कहना इतना है कि बोलने से केवल इतनी हालत पैदा की जा सकती है कि आपको एक दिन लगे कि एब्सर्ड है, बेकार है। कुछ न हुआ। न बोलने से कुछ हुआ, न सुनने से कुछ हुआ। इतने निगेटिव अर्थ में ही कम्युनिकेशन का उपयोग है कि हम सिर खपाते रहें, खपाते रहें; आपका भी सिर पक जाए, मेरा भी पक जाए और मैं कहूं कि बकवास बंद। आप कहें, अब चुप हो जाइए, अब मुझे कुछ नहीं सुनना है। एक घड़ी ऐसी आ जाए कि आप घबड़ा जाएं और आप कहें, कि नहीं जाना जा सकता, तो शायद आप घर के बाहर निकल जाएं, पेंटिंग को यहीं छोड़ दें। वहां सूरज है, यहां सूरज है नहीं कोई, हमारे संवाद न करने और करने का कोई सवाल नहीं है।
रवींद्र्रनाथ के जीवन में एक बड़ा अच्छा उल्लेख है। वे रात एक किताब
पढ़ रहे हैं। सौंदर्य पर एक किताब पढ़ रहे हैं। रात दो बज गए हैं। और पढ़ते- पढ़ते थक गए हैं। क्रोध से किताब पटक दी है; दीया बुझा दिया है और फिर खड़े होकर नाचने लगे हैं। क्योंकि जब तक वे किताब पढ़ रहे थे, उनको पता ही न था कि बाहर पूर्णिमा की रात है। और जैसे ही किताब रख दी है और दीया बुझाया है, चांद की सब किरणें भीतर भर गई हैं बजरे के अंदर। जहां नाव पर वे थे और चांद बाहर था, पर दीया भीतर जल रहा था। फिर चांदनी भीतर हो गई, तो वे नाचने लग गए हैं और उन्होंने कहा कि मैं भी कैसा पागल था, आधी रात गंवा दी। किताब पढ़ता था जानने को कि सौंदर्य क्या है और सौंदर्य बाहर खड़ा ही था! और वह पूरे वक्त दरवाजे पर ठोकर दे रहा था कि तुम दीया बुझाओ, तुम किताब बंद करो, तो मैं आ जाऊं!
लेकिन अब मुझे मिलने का उपाय नहीं, अगर मैं रवींद्रनाथ को मिल सका, मिल सकता तो उनसे कहता कि हो सकता था, सांझ आप सो गए होते और चांद फिर भी बाहर खड़ा रहता। आधी रात किताब पढ़ने में कम से कम एक हालत पैदा की, एक विपरीत हालत पैदा की कि सब बेकार है, इससे कुछ समझ में नहीं आता। किताब पटक सके आप तो ही चांद देख सके। किताब तो नहीं बता सकी सौंदर्य क्या है? लेकिन किताब को पटकना एक स्थिति है मन की, जिसके बिना हो सकता था, सौंदर्य न जाना जा सकता।
मैं यह कह रहा हूं कि दर्शन का एक ही उपयोग है, फिलासफी का कि इतना आप परेशान हो जाएं कि एक दिन किताब पटक सकें। उस फ्रस्टेशन की हालत में, उस थकी-मांदी सर्वहारा दशा में जब कोई मार्ग नहीं, कोई दिशा नहीं, कोई आशा नहीं, तब शायद आप उसको देख लें, जो है। वह तो है ही। उसका कोई सवाल नहीं है। अगर मेरे कम्युनिकेट करने पर उसका होना निर्भर होता, तो कोई खतरा था। लेकिन मेरे संवादित करने पर और उसके होने में कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह है ही। खतरा तब है, जब कि हम ऐसा समझ कर चलें कि संवाद हो जाएगा।
संवाद एक अर्थ में असंभव है। बौद्धिक संवाद तो असंभव है। यानी वह असंभावना ही है, असंभावना का ही नाम है। फिर क्या और कोई संवाद हो सकता है? और कोई संवाद नहीं है, और क्या संवाद करिएगा?

हम चुप बैठ सकते हैं, लेकिन जब हम चुप बैठेंगे तो मेरे और आपके बीच बात नहीं होगी। जब हम चुप बैठेंगे, तो मेरी भी जो रियलिटी है, उससे बात होगी और आपकी भी रियलिटी से बात होगी। अगर इसको मैं ऐसा कहूं जो है, वे हमें एक दूसरे की तरफ अभिमुख कर देते हैं। मौन जो है, वह हमें सत्याभिमुख कर देता है। जब हम बातचीत करते होते हैं, तब मैं आपकी तरफ देखता हूं, आप मेरी तरफ देखते हैं और सत्य यहां खड़ा हुआ देखता रहता है कि दोनों आपस में उलझे हुए हैं। जब शब्द बीच से खो जाते हैं, तब न मैं आपकी तरफ देखता, न आप मेरी तरफ देखते हैं और मजबूरी में, जो है, उसको हमें देखना पड़ता है। एक घड़ी आनी चाहिए जिंदगी में जब शब्द व्यर्थ हो जाएं। मगर यह आएगी भी नहीं, जब तक शब्द के साथ श्रम न चले, व्यायाम न चले।

प्रश्नः हमारे गुरु कहते हैं कि सत्य का स्वभाव सच्चिदानंद है। विवेकानंद जी ने भी ऐसा ही कहा है। क्या सत्य की व्याख्या यह नहीं है?

नहीं, सत्य की कोई परिभाषा नहीं हो सकती है। यह हमारी आकांक्षाओं की परिभाषा है। हमारी आकांक्षा है कि सत्य ऐसा हो। सच्चिदानंद हो। सत भी हो, चित भी हो, आनंद भी हो। यह हमारी आकांक्षा है। यह आदमी की आकांक्षा है कि सत दुख न हो, नहीं तो मर गए। यहां संसार दुख है और सत्य भी दुख है, मोक्ष भी दुख है, तो हम कहां जाएंगे? तो मोक्ष ऐसा हो, जहां दुख बिल्कुल न हो। मोक्ष ऐसा हो, जहां कि अज्ञान बिल्कुल न हो, ज्ञान ही ज्ञान हो। मोक्ष ऐसा हो जहां अंधेरा बिल्कुल न हो, प्रकाश ही प्रकाश हो।
तो सच्चिदानंद जो है, सत्य की परिभाषा नहीं है। यह हमारी आकांक्षा है। और हमारी आकांक्षा हमें बड़ी प्रीतिकर लगती है। इसलिए जिस शास्त्र में यह लिखी हो, उस शास्त्र को हम बड़ा प्रेम करेंगे, और अगर विवेकानंद कहेंगे, तो वे भी बड़े गुरु हो जाएंगे। इसका कुल कारण इतना है कि हमारी आकांक्षाओं को तृप्ति मिले। अगर कोई गुरु आए और कहे कि सत्य बड़ा दुखद है और एकदम अंधकारपूर्ण है, और अज्ञान ही अज्ञान है, तो आप कहेंगे कि आपकी क्या जरूरत है? आप यहां किसलिए हैं? हम तो काफी अज्ञान वैसे ही झेल रहे हैं, काफी दुख झेल रहे हैं, और मोक्ष में भी यही होगा, तो फिर तो कोई उपाय न रहा! हमारी आकांक्षाएं हैं ऐसी कि आत्मा अमर हो, कभी न मरें हम। सुख ही सुख हो, दुख न हो। लेकिन सत्य की यह परिभाषा नहीं है।
मेरी तो अपनी समझ यह है कि जहां आनंद होगा, वहां दुख के भी बड़े नये आयाम होंगे, होने भी चाहिए। अभी जिस दुख को हम जानते हैं, वह बड़ा छिछला है। जिस सुख को जानते हैं, वह भी बड़ा छिछला है। असल में, इनकी मात्रा बराबर होती है। जिस दिन आनंद इतना गहरा होगा कि रोआं-रोआं कंप जाए, इस भूल में मत पड़ना कि उस दिन दुख भी इतना गहरा नहीं होगा। उस दिन दुख भी इतना ही गहरा होगा कि रोआं-रोआं कंप जाएगा। हमारी संवेदनशीलता बराबर बढ़ती है।
एक आदमी को अगर सौंदर्य का बहुत बोध है, तो उसको कुरूपता का भी उतना ही बोध हो जाता है। यह असंभव है कि एक आदमी को सौंदर्य का ही सिर्फ बोध हो और कुरूपता का बोध न हो। यह तो असंभव है, यह तो एक साथ बढ़ेगा। एक साथ ही अगर एक आदमी को स्वच्छ रहने का बड़ा आनंद है, तो उसे अस्वच्छ होने की पीड़ा बढ़ जाएगी उसी मात्रा में। लेकिन हमारी आकांक्षाएं चाहती हैं कि ऐसी दुनिया हो, जहां अंधेरा न हो और रोशनी ही रोशनी हो। हालांकि, भगवान हमारी आकांक्षाएं पूरी नहीं करता, नहीं तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ जाएं। और रोशनी ही रोशनी हो, तो रोशनी बहुत घबड़ाने वाली हो जाए। रोशनी में भी, सुबह जो हमें सुख मालूम पड़ता है, उस सुख को पाने का अर्जन भी रात के अंधेरे में ही हमने किया है। और सुबह जब किसी के प्रेम में आनंद आता है, तो वह कल किसी की घृणा में झेले गए दुख का भी उसमें हाथ है। यह अकेला नहीं है।
सत्य तो इतना बड़ा है कि उसमें दुख भी होगा और आनंद भी होगा और प्रकाश
भी होगा। और उसमें परमात्मा भी होगा और शैतान भी होगा। सत्य तो टोटेलिटी से होगा, पूरे को घेरेगा। उसमें अमरता भी होगी, तो उसमें मृत्यु भी होगी, उसमें पूर्ण मृत्यु भी होगी। सत्य तो सब घेर लेगा, जो है। और हम जो हैं,

पूरे को नहीं देखना चाहते हैं क्योंकि हम खुद ही घबड़ाते हैं कि पूरा न दिखाई पड़े। क्योंकि पूरा दिखाई पड़ने का बड़ा और ही मतलब होगा।
अभी मैं बात कर रहा था, कोई आया, तो मैंने उससे कहा कि आ जाओ। किसी ने पूछाः आप दोनों बातें एक साथ कह रहे हैं, आ--जाओ। आओ भी और जाओ भी! तो मैंने उनको कहा कि जिंदगी में दोनों साथ ही हैं। जहां आना है, वहां जाना जुड़ा हुआ है। आने का मतलब ही है, जाने की शुरुआत। और जवान होने का मतलब है बूढ़ा होना। और जन्म लेने का मतलब है मरने की तैयारी।
पूरे सत्य को अगर हम देखने जाएंगे, तो उसमें सब है अपनी पूर्णता में, लेकिन हमारी न तो हिम्मत है कि उतनी पूर्णता को देख सकें। हम तो काट कर च्वाइस करेंगे। तो वे जो परिभाषाएं हैं, वे तो हमारे चुनाव हैं, हमारी आकांक्षाएं हैं। अब ऋषि कहता है, हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल। इसमें ऋषि भगवान के खिलाफ बड़ी शिकायत कर रहा है। वह यह कह रहा है, अंधकार क्यों है? प्रकाश ही चाहिए। वह यह कह रहा है कि तुमने बड़ी भूल की जो अंधकार दिया; सिर्फ प्रकाश चाहिए। मुझे तो प्रकाश की तरफ ले चल।
सत्य तो अंधकार भी है और प्रकाश भी; वह जीवन भी है, मृत्यु भी। जब हम ऐसा देखेंगे--ये दोनों, जो हमें विरोधी लगते हैं, जब हमें एक ही चीज के छोर दिखाई पड़ेंगे, तभी हम जान पाएंगे कि क्या है। और जब हम ऐसे विरोध को एक साथ जान पाएंगे, तो हमारे चित्त के सब खंड विदा हो जाएंगे, तब हमारी कोई आकांक्षा न रह जाएगी, क्योंकि आकांक्षा का फिर कोई मतलब नहीं है। फिर अंधेरा होगा, तो हम जानेंगे कि प्रकाश के आने की तैयारी है। प्रकाश होगा, तो यह अंधेरे की तैयारी है। और दुख होगा तो जानेंगे, आस-पास कहीं सुख है। और सुख होगा, तो हम जानेंगे कि तैयार रहो, दुख आता है। दुख के लिए हमारी तैयारी होगी। हम जानेंगे कि यह हमारा जीवन है। लेकिन अभिलाषाएं सुख देती हैं बहुत। और धर्म के नाम पर तो बहुत कुछ हमारी मनोकांक्षाएं हैं, इच्छाएं हैं जो चलती हैं। जो दुखी हैं, पीड़ित हैं।
बर्ट्रेंड रसेल ने एक बहुत बढ़िया बात कही है। उसने कहा है कि अगर दुनिया सच में सुखी हो जाए, तो धर्म-गुरुओं का क्या होगा? क्योंकि दुखी लोग सुख की तलाश में निलकते हैं, अगर सच में दुनिया सुखी हो जाए तो कौन... ? कभी आपने ख्याल किया कि जब आप किसी क्षण में आनंद में होते हैं, तो क्यों नहीं उठता--कि दुनिया क्यों है; मैं क्यों पैदा हुआ; यह भगवान ने क्यों बनाया यह सब; नरक है कि स्वर्ग है, कि नहीं। कुछ "क्यों" नहीं उठता। जब आप आनंद में होते हैं, तो सब स्वीकार होता है। जो है, वह है! उसके होने में कहीं भी जरा, कोई जरा सा प्रश्न भी नहीं लगता। लेकिन जब आप दुख में होते हैं, तब सब प्रश्न उठने शुरू हो जाते हैं। और जब प्रश्न उठने शुरू हो जाते हैं, तो उत्तर चाहिए। तो जो उत्तर हमारे मन के अनुकूल होते हैं, उनके हम धर्म बना लेते हैं।
सच्चे उत्तर का धर्म नहीं बन पाता, मनोनुकूल उत्तर का धर्म बन जाता है। और सच्चा उत्तर जरूरी नहीं कि मनोनुकूल हो। कोई आवश्यक नहीं है कि आपके मन के अनुकूल सत्य चलता हो! हां, सत्य के अनुकूल आप चाहें तो चल सकते हैं। सत्य में कोई बंधन आपके अनुकूल चलने का नहीं है। लेकिन मनोनुकूल उत्तर धर्म बन जाता है। तो उत्तर हमारे मन को भा जाता है और लगता है कि हां! हमारी तृप्ति कर दी, हमारा प्रश्न इससे हल होता है।
मैं नहीं कहता कि इन बातों में कुछ सार है। और विवेकानंद की बात आपको अच्छी लगती है, वह इसलिए नहीं कि सच है, वह इसलिए कि आपके मन के अनुकूल है। अनुकूल है तो अच्छी लगती है, अनुकूल नहीं है तो अच्छी नहीं लगती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बस, उससे उलटी हमने वहां कल्पना कर ली है। लेकिन हमारी कल्पनाओं से कुछ हल नहीं होता। और हम कितना ही चाहें, सुख सुख को ही वरण कर लें और दुख को इनकार कर दें... । हम यह समझ ही नहीं पा रहे हैं कि सुख को वरण करने में ही दुख वरण हुआ जा रहा है। वह ऐसे है, जैसे एक सिक्का है और उसका एक पहलू फेंक देना चाहता हूं और एक पहलू बचा लेना चाहता हूं। अब मैं पागल हो जाऊंगा,

क्योंकि मैंने एक ऐसा काम शुरू किया है, जो पूरा हो नहीं सकता। एक हिस्सा फेंक देना चाहता हूं एक सिक्के का, और एक हिस्सा बचा लेना चाहता हूं। ज्यादा से ज्यादा इतना ही हो सकता है कि जिस हिस्से को मैं बचाना चाहता हूं उसे ऊपर कर लूं, और जिसे फेंक देना चाहता हूं उसे नीचे कर लूं। इससे ज्यादा कोई सफलता नहीं मिल सकती है। लेकिन कितनी देर ऊपर-नीचे करूंगा। जिसको मैंने ऊपर किया है उससे थोड़ी देर में ऊब जाऊंगा, क्योंकि कब तक उसे देखता रहूंगा!
और बड़े मजे की बात है कि दुख कभी उतना उबाने वाला नहीं होता है, जितना सुख उबाने वाला होता है। असल में दुखी आदमी कभी बोर ही नहीं होता है, सिर्फ सुखी आदमी बोर होता है। बोर्डम जो है, वह सुखी आदमी का गुण-धर्म है। इसलिए आप हैरान होंगे कि जितना समाज दुखी होता है, उतनी आत्महत्या कम होती है, लोग कम परेशान नजर आते हैं, कम चिंताएं घेरती हैं। क्योंकि दुखी आदमी को बोर होने की फुर्सत नहीं है, वह काम में लगा हुआ है, बदलने में लगा हुआ है कि सिक्के को उलटा कर ले, लेकिन जब सिक्का उल्टा हो जाएगा, फिर क्या करेगा? एक दफा दुख को नीचे दबा दिया और सुख को ऊपर कर लिया, फिर क्या करिएगा? और अब अगर सिक्के को उल्टाया तो नीचे दुख है। तो जैसे ही एक आदमी सुखी हुआ कि मुसीबत शुरू हुई।
देवताओं की दुनिया में अगर कोई दुख होगा, तो बोर्डम का होगा। मोक्ष में भी अगर कोई दुख होगा, तो बोर्डम का होगा। और बोर्डम इतनी होती होगी-- मैं नहीं समझता कि मोक्ष में कोई एक भी बचा होगा, सब भाग गए होंगे--उनकी बोर्डम की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। क्योंकि जहां सुख बिल्कुल उपलब्ध हो, वहां करिएगा क्या? वह तो दुख से लड़ने में रस है। सुख मिलता नहीं, उसके पाने की आकांक्षा में सारा मजा है। और जब मिल जाता है, तब थोड़ी देर बाद हम पाते हैं कि अब क्या करें? तब आप हैरान होंगे कि सुखी आदमी अपने हाथ से दुख भी खोजने लगता है। वह ऐसी तरकीबें करता है, जिसके साथ दुख आए।
मैं, एक फकीर हुआ है नसरुद्दीन, उसकी कहानी कहता रहता हूं। वह एक गांव
के बाहर बैठा हुआ है। सांझ का वक्त है, अंधेरी रात है और एक आदमी आकर घोड़े से उतरा है। और उस आदमी ने उस नसरुद्दीन के सामने एक बहुत बड़ी थैली पटक दी है और कहा है कि इसमें करोड़ों रुपयों के हीरे-जवाहरात हैं और इसे मैं किसी को भी देने को तैयार हूं, मुझे जरा-सा सुख मिल जाए। और मैं गांव-गांव खोज रहा हूं, मुझे सुख नहीं मिलता। मैं परेशान हो गया कि मैं मर जाऊं कि क्या करूं। सब है मेरे पास, सुख नहीं है। किसी ने मुझसे कहा कि एक फकीर है नसरुद्दीन, उसके पास चले जाओ। तुम्हीं हो? मैं तुम्हारे पास आया हूं। फकीर खड़ा हो गया, उसने कहा कि मैं नहीं हूं। उसने कहाः तुझे सुख चाहिए? उस आदमी ने कहाः सुख चाहिए, सब खोने को तैयार हूं। मुझे एक क्षण भर के लिए भी सुख मिल जाए।
उस फकीर ने इतनी बातचीत की और थैली लेकर भागा। वह आदमी चिल्लाया कि यह क्या कर रहे हो? मैं तो सोचता था कि तुम ब्रह्मज्ञानी हो! लेकिन जब वह नहीं रुका, तो वह आदमी उसके पीछे भागा। गांव फकीर का तो जाना-माना था। वह गली- कूचे में चक्कर देने लगा। सारा गांव इकट्ठा हो गया। और वह चिल्ला रहा है कि मुझे लूट लिया, मैं मर गया, मेरी जिंदगी खराब हो गई। मेरी जिंदगी भर की कमाई है उस थैले में। और यह आदमी चोर निकला, यह ब्रह्मज्ञानी नहीं है। इसे पक.ड़ो और मुझे बचाओ, मैं मरा!
वह सारे गांव में चक्कर लगा कर फकीर वापस अपनी जगह आ गया और थैली पटक
कर झाड़ के पास खड़ा हो गया। वह अमीर आदमी आया, उसने थैली छाती से लगाई और कहाः हे भगवान, धन्यवाद! उस फकीर ने कहाः कुछ सुख मिला? यह भी एक रास्ता है सुख पाने का, उस फकीर ने कहा। और तुम्हारे लिए यही रास्ता बचा है। तुम्हारे लिए दूसरा रास्ता नहीं है। अब तुम क्या करोगे?
हम जो चाहते हैं कि सुख ही सुख बच जाए, वह संभव नहीं है। अगर बच भी गया,
तो सुख भी दुख देने लगेगा। तब मैं कहता हूं कि जो जीवन को उसकी सचाई में देखता है, आकांक्षाओं में नहीं... । दो रास्ते हैं, एक तो मैं आकांक्षाओं से जीवन को देखने जाऊं। जब मैं कहता हूं, सुख ही सुख चाहिए, तब मैं जीवन की फिकर नहीं कर रहा। मैं यह कह रहा हूं कि मुझे चाहिए। लेकिन मैं यह नहीं

पूछता कि जीवन को मेरी फिकर है कुछ? मैं नहीं था और जीवन था। और मैं नहीं रहूंगा और जीवन रहेगा और रत्तीभर कहीं कोई पत्ता नहीं हिलेगा, कहीं कोई लहर नहीं कंपेगी, कहीं कुछ नहीं होगा। मेरे होने न होने से जीवन को क्या फिकर है! जीवन की अपनी धार है। मैं इधर दो क्षण को हूं तो मैं कहता हूं, ऐसा चाहिए, ऐसा चाहिए, ऐसा चाहिए। जब मैं यह देखता हूं कि मैं नहीं था और सब था, और मैं नहीं रहूंगा और सब होगा--तब उचित है कि मैं देखूं कि क्या है, बजाय इसके कि मैं कहूं कि क्या होना चाहिए।
तो जब मैं देखूंगा कि क्या है, तो मुझे पता चलेगा कि दुख और सुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और जब दोनों ही एक सिक्के के दो पहलू हैं, तो किसको बचाना और किसको छोड़ना? तब मैं राजी हूं--सुख आए तो सुख के लिए, दुख आए तो दुख के लिए।
और यह जो राजी होना है, यह जो एक्सेप्टेबिलिटी है, यह एक ऐसे आनंद में उतार देती है, जिसका हमें कुछ भी पता नहीं। वह आनंद दुख-विरोधी नहीं है। वह आनंद दुख में भी रहेगा। वह आनंद सुख का पर्यायवाची नहीं है, क्योंकि सुख चला जाएगा, तब वह रहेगा। और इसलिए उसको आनंद कहने से भी था.ेड़ी भूल हो जाती है।
तो बुद्ध ने "आनंद" का उपयोग नहीं किया, "शांति" का उपयोग किया। आनंद शब्द छोड़ दिया। क्योंकि आनंद में कहीं न कहीं सुख का ख्याल है। हम कितना ही उसको बचाने की कोशिश करें, आनंद में कहीं न कहीं सुख का भाव है। एक शांत मन रह जाता है; सुख है। और वह तभी रह सकता है, जब दोनों एक से स्वीकारे गए हों, क्योंकि दोनों हैं। स्वीकार करने की हमें चेष्टा नहीं करनी है। "अस्वीकार करने का कोई अर्थ ही नहीं है", यह हमें दिखाई पड़ जाए, तो बात खत्म हो गई।
लेकिन हम आकांक्षाएं आरोपित कर रहे हैं, इसलिए हमने इस तरह के धर्म खड़े कर लिए हैं, गुरु भी खड़े कर लिए हैं जो हमारी आकांक्षाओं की तृप्ति के रास्ते बता रहे हैं। वे हमसे कहते हैं, हम परम आनंद में पहुंचा देंगे। हम पहुंचने की कोशिश करते हैं। हम कभी पूछते भी नहीं कि परम आनंद में होने की आकांक्षा ही दुखी आदमी का लक्षण है। और दुखी आदमी कैसे परम आनंदित हो सकता है मंत्र पढ़ने से? तो इतना ही फर्क है दुखी और परम आनंदित आदमी में? एक मंत्र पढ़ता है, एक मंत्र नहीं पढ़ता है? इतनी सस्ती तरकीब काम कर जाएगी और परम आनंद मिल जाएगा? कि हम सोचते हैं कि परम आनंद मिल जाएगा उपवास करने से, कि रात खाना न खाने से? कि सिगरेट न पीने से, कि चाय न पीने से परम आनंद मिल जाएगा? अगर इतना ही फासला है तो दुखी और परम आनंदित आदमी में बहुत फर्क नहीं है। सिगरेट, पान इत्यादि का फर्क है! बहुत ही मिडियाकर फर्क है। ऐसा कमजोर फर्क है कि कोई हिम्मत का आदमी जाना नहीं चाहेगा। इतना सस्ता सा फर्क मोक्ष में और पृथ्वी पर! कि मोक्ष में लोग सिगरेट नहीं पीते, चाय नहीं पीते और सिनेमा नहीं देखते! इतना ही अगर फर्क है तो कौन मोक्ष जाना चाहे! तो उसमें कोई मतलब नहीं रह गया है, उसमें कोई बात नहीं।
फर्क कुछ ज्यादा रैडिकल होना चाहिए। यह कोई फर्क ही न हुआ। फर्क का मतलब ही यह है कि हम जहां हैं, उसमें हमारी दो तरह की जिंदगी हो सकती है-- आकांक्षाओं को आरोपित करने वाली और यथार्थ को स्वीकार कर लेने वाली। ये दो तरह की जिंदगियां हैं। आकांक्षाओं को आरोपित करने वाला आदमी है, और यथार्थ को स्वीकार कर लेने वाला आदमी है।
आकांक्षाओं को आरोपित करने वाला चाहे कुछ भी करे, दुख में रहेगा। ऐसा नहीं है कि जो आकांक्षाओं को आरोपित नहीं करता, उसको दुख नहीं आएंगे। दुख उसको भी आएंगे, लेकिन वह दुख में नहीं रहेगा।

प्रश्नः मगर आकांक्षा है, यह भी रियलाइज तो करना पड़ेगा न?

आकांक्षा है ही। हम क्या कर रहे हैं? हम उनको नहीं देख रहे हैं; उनके अनुकूल जगत को देखने की कोशिश में लगे हैं। हम उनको भी देख लें, तो वे भी यथार्थ के हिस्से हैं। आकांक्षाएं भी तो रियलिटी का हिस्सा हैं। वे तो यथार्थ हैं, कि हममें हैं। और मुझमें इच्छा है कि मैं अमर रहूं। यह मुझे

जानना चाहिए। लेकिन बजाय इसको जानने के, मैं वह शास्त्र पकड़ लूंगा, जिसमें लिखा है कि हां, अमर रहना पक्का है; और जो हमारे पक्ष में हैं, वे अमर रह जाएंगे, जो हमारे पक्ष में नहीं हैं, वे मर जाएंगे।

प्रश्नः मनुष्य आनंदित क्यों नहीं है?

क्योंकि मनुष्य दुखी है। जो मैं कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि आदमी दुखी है, क्योंकि सुख खोजना चाहता है। और चूंकि सुख खोजता ही रहेगा और कभी यह न देखेगा कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, इसलिए कितना ही सुख खोजे, दुखी रहेगा और सुख खोजता रहेगा। जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि एब्सर्डिटी उसको दिखाई नहीं पड़ रही है कि सुख की खोज में यह एक बुनियादी भूल हो गई है। वह भूल यह हो रही है कि वह दुख को अस्वीकार करके सुख को खोज रहा है, जब कि सुख दुख का ही हिस्सा है। यानी मैं जन्म खोज रहा हूं और मरना नहीं चाहता। जवानी खोज रहा हूं और बूढ़ा नहीं होना चाहता! तो बड़ी मुश्किल बात है। जवान होना चाह रहा हूं, तो बूढ़ा होना उसका हिस्सा ही होगा। वह उतरती हुई जवानी का नाम है। पूर आ गया, तो उतरेगा ही।
सुबह हो गई, तो सांझ भी होगी। अब सुबह तो मैं खोज रहा हूं और सांझ से बचना चाहता हूं। और जब मैंने सुबह खोजी, तभी मैंने सांझ का इंतजाम कर दिया कि सांझ होगी। अगर मैं सिर्फ सुबह को ही खोजूं, तो फिर शाम को दुख होगा। और रातभर फिर सुबह की खोज करूंगा। फिर सुबह आएगी और फिर सांझ की तैयारी शुरू होगी, मैं फिर दुखी होऊंगा। और मजा यह है कि न तो आपकी खोज से सुबह आ रही है, न सांझ हो रही है। सुबह अपने आप आ रही है, सांझ अपने आप आ रही है। आपकी जो परेशानी है, वह यह है कि एक से आप राग लगा रहे हैं कि बस यही रह जाए, और एक को आप कह रहे हैं, यह न हो। और उनको दोनों को आपसे मतलब नहीं है। आप हों या नहीं हों, वे होते रहेंगे।
जिंदगी में सुख और दुख घूम रहे हैं। सब घूम रहा है। आप जब उसमें चुनाव करने लगते हैं कि हम यह चुन कर रहेंगे, तभी आपने तकलीफ शुरू कर दी, वह दुख का रास्ता हो गया। जब दुखी होंगे, तब और जोर से सुख खोजेंगे, और जितने जोर से सुख खोजेंगे, उतने जोर से दुखी होंगे। तब एक वीसियस सर्किल है, जिससे बचाव मुश्किल हो जाएगा। इसको देखना पड़ेगा।
हमारी तकलीफ है कि अगर हम पूछते भी हैं कि हम दुखी क्यों हैं, तो हम कुछ कारण खोज लेना चाहते हैं दुख के कि हमने कोई बुरा काम किया होगा इसलिए दुखी हैं। हमने कुछ पाप किया होगा इसलिए दुखी हैं। दूसरा आदमी सुखी है, उसने कुछ पुण्य किया होगा, फलां किया होगा।
सुखी और दुखी होना पुण्य और पाप से संबंधित नहीं है। सुखी और दुखी होना हमारी आकांक्षाओं के आरोपण से संबंधित है। कितने जो ऐसे आरोपित करने की आकांक्षा में लगे हैं, लेकिन किसी दिन डिसइलूजनमेंट आता है। पता चलता है, कुछ आरोपण से नहीं होता है। सुबह आती है और जाती है। सांझ आती है और आती है। बात खत्म हो गई।
तब भी सुबह आएगी, कुछ ऐसा नहीं कि नहीं आएगी। तब भी सांझ आएगी, लेकिन दंश चला जाएगा। तकलीफ चली जाएगी, पीड़ा चली जाएगी। और तब जिसने सुबह ठीक से जी ली है, कोई कारण नहीं कि सांझ को ठीक से क्यों न जी ले? यानी मामला यह है कि ठीक से जिसने सुबह को पूरी तरह जी लिया है, वह तो खुद ही दोपहर होते-होते कहेगा, अब सांझ हो जाए। जो आदमी ठीक से जवान रह लिया है, बुढ़ापे की आकांक्षा उसके भीतर आ जाएगी। जब वह बूढ़ा हो जाएगा, जो आदमी ठीक से जी लिया है, वह मरना भी चाहेगा।
नीत्शे ने एक बहुत अच्छी बात कही है। नीत्शे ने कहा है कि जब फल पक जाता है, तो गिरना चाहता है। राइपनेस इ.ज ऑल। एक दफा पक भर जाए। और जब पक जाता है, तो गिरना ही चाहता है। सिर्फ कच्चे फल घबड़ाते हैं। पक जाता है, तो गिरना ही चाहता है। सिर्फ कच्चे फल घबड़ाते हैं कि कहीं गिर न जाएं, कि कहीं गिर न जाएं! और चूंकि हम जिंदगीभर कच्चे रह जाते हैं, इसलिए मरने से डरते हैं। अब इस तरह चक्कर पर चक्कर पैदा होते चले जाते हैं कि मरने से डरते हैं तो उस सिद्धांत को पकड़ते हैं, जो कहते हैं कि मरोगे नहीं। न मैं यह कह रहा

हूं कि मर जाएंगे आप, न मैं यह कह रहा हूं कि नहीं मरोगे। मैं सिर्फ इतना ही कह रहा हूं कि हम अपनी आकांक्षाएं आरोपित न करके, जो है, उसे जानने की फिकर करें, तो बात पूरी हो जाती है। नहीं तो नहीं पूरी होती है।

प्रश्नः व्यक्ति के तल पर तो यह ठीक है कि हम स्वीकार कर लेंगे। लेकिन समाज के तल पर गरीबी है, बीमारी है, दुख है, शोषण है, उस सबको भी स्वीकार कर लें?

यह बहुत बढ़िया बात है। मैं इधर जितना सोचता हूं, बहुत अजीब अनुभव करता हूं। पहली बात तो यह है कि यह कंट्राडिक्ट्री दिखाई पड़ेगा, लेकिन ऐसा है। जो व्यक्ति स्वयं के तल पर सुख-दुख स्वीकार नहीं करता, वह समाज के तल पर सब बीमारियों को स्वीकार करने वाला होता है। जैसे हमारा मुल्क है। हमने व्यक्ति के तल पर सुख-दुख कभी स्वीकार नहीं किए, हम मोक्ष की खोज निरंतर कर रहे हैं, जहां सुख-दुख से छुटकारा हो जाए, आवागमन से छुटकारा हो जाए। लेकिन समाज के तल पर हमने सब स्वीकार कर लिया है। अगर यह बात भी दिखाई पड़े, तो इससे उलटा भी सत्य है कि जो व्यक्ति स्वयं के तल पर सब स्वीकार कर लेगा, वह समाज के तल पर कुछ भी स्वीकार नहीं करेगा। जो स्वयं के तल पर सब स्वीकार कर लेगा, वही क्रांतिकारी हो सकता है।
जो स्वयं के तल पर सब स्वीकार कर लेगा, वही क्रांतिकारी हो सकता है। क्योंकि क्रांति का सुख तो किसी और को मिलेगा, क्रांति का सुख क्रांतिकारी को तो मिलता नहीं! तो क्रांति सिर्फ वही कर सकता है, जो दुख को स्वीकार कर सकता है। जब एक व्यक्ति सब तरह के दुख-सुख को जैसा है, वैसा स्वीकार कर लेता है, तो चेष्टा नहीं करनी पड़ती है उसे कि वह समाज के तल पर अस्वीकार करे। न, उस व्यक्ति का सहज वर्तन यह हो जाता है कि समाज के तल पर वह स्वीकार नहीं कर सकता है। यानी मैं यह नहीं कह रहा हूं कि वह स्वीकार नहीं करेगा, या कि स्वीकार नहीं करना चाहिए। न, ऐसा वर्तन होता है।
जो व्यक्ति स्वयं के तल पर टोटल एक्सेप्टेबिलिटी में जीता है, वह समाज के तल पर रिजेक्शन में जीता है। जो अपने तल पर कहता है, मैं यह दुख में नहीं रहूंगा, यह नहीं करूंगा, वह समाज के तल पर सब स्वीकार कर लेता है। उसके कारण हैं।
जो व्यक्ति व्यक्ति के लिए सब कुछ करने की चिंताओं में रत रहता है, उसके लिए समाज का बोध ही पैदा नहीं होता है। यानी समाज की जो धारणा है, कांशसनेस है, वह उसको पैदा होती है जो व्यक्ति के तल पर निपट गया, यानी अब इधर कुछ करने का मामला बचा नहीं। बात खत्म हो गई। इधर मैंने मान लिया कि जो है, है। तब मैं क्या करूंगा? आखिर मैं कुछ तो करूंगा! व्यक्ति के तल पर तो करने से मुक्त हो गए। तो वह जो सृजन की, निर्माण की, विध्वंस की ऊर्जा जो भी है मेरे पास, वह जाएगी कहां? वह अब कहीं सक्रिय हो जाएगी।
व्यक्ति के केंद्र पर जहां ऊर्जा का काम समाप्त हो गया, वहां वह समाज
के चारों तरफ फैल कर काम में लग जाती है। ऐसा नहीं है कि वह मन लगाता है, यह मैं नहीं कह रहा हूं। इट हैपन्स। वह लग जाती है।
और अगर सारी ऊर्जा इसी में लगी हुई है कि मेरा अगला जन्म शुद्ध कैसे रहे और मैं स्वर्ग कैसे जाऊं, मैं पुण्य कैसे करूं और पाप से कैसे बचूं, और यह खाऊं, यह पीयूं कि न पीयूं, अगर सारी चेतना यहां उलझी, तो समाज की तो धारणा ही नहीं पैदा होगी। हमें पता ही नहीं चलता कि हमारे अलावा भी कोई है।
इसलिए जो कौम, जो व्यक्ति, जो समाज ऐसा व्यक्तिवादी होगा, वह तो यहां
तक कहेगा, न तुम्हारी कोई पत्नी है, न तुम्हारी कोई मां है, न तुम्हारा कोई पिता है, न कोई भाई है, न कोई बेटा है। यह सब भ्रम है। हो तो तुम्हीं सिर्फ सत्य। बाकी सब भ्रम है। सब माया है।
इससे तुम बचो। और इसके चक्कर में न पड़ जाना। न कोई मौत में साथ देंगे,
न कोई पुण्य में साथ देंगे, न कोई पाप में साथ देंगे। तुम अकेले हो निपट। अपनी फिकर करो। सारी फिकर अपनी करना। इसकी फिकर मत करना कि औरत अगर भूखी मर रही है तो मर रही है, वह अपने पिछले जन्मों का पाप-फल भोग रही है।

तुम्हारा क्या लेना-देना है? तुम्हारा बच्चा जब सड़क पर भीख मांग रहा होगा, तो मांग रहा होगा। भीख उसको मांगनी पड़ेगी। यह उसका कर्मफल है। तुम अपनी फिकर करो।
यह जो व्यक्तिवादी दृष्टि थी, अगर कोई सब स्वीकार कर ले, तो व्यक्ति
रह ही नहीं जाता। अगर गौर करें, तो वह जो इगो है व्यक्ति की, वह पैदा होती रहती है रेसिस्टेंस से। वह जितना मैं लड़ता हूं कि यह नहीं चाहिए, यह नहीं चाहिए, यह नहीं चाहिए, इसी संघर्ष से मेरा "मैं" पैदा होता है कि मैं हूं। च्वाइस "मैं" पैदा करती है। च्वाइसलेस इगो नहीं हो सकती। फिर कोई बचने का उपाय नहीं रह जाता।
मैं हूं का क्या मतलब है? सुबह सूरज निकलता है, सांझ सूरज ढलता है, मैं कहा हूं! मैं कहता हूं कि सुबह ही होनी चाहिए। और आठ घंटे, दस घंटे सूरज को ढलने में तो लगेंगे। आठ-दस घंटे मैं अपने "मैं" को मजबूत करूंगा कि अभी तक सूरज नहीं ढलने दिया, अभी तक सूरज को रोके हुए हूं! अभी तक सुबह है! जब ढल जाएगा तब सोचूंगा। जरूर पिछले जन्म का कोई कर्म बाधा डाल दिया। और सूरज अपने आप ढल रहा है और अपने आप डूब रहा है! मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। इधर मेरी इगो मजबूत होती चली जाएगी। लेकिन जब मैंने मान लिया कि ऐसा हो रहा है, तब अचानक मेरी सारी ऊर्जा और सारी शक्ति चारों तरफ फैल कर काम करने में लग जाती है। यानी मेरी दृष्टि में, क्रांतिकारी पैदा होता है सर्व स्वीकार से। उलटा लगता है, क्योंकि क्रांतिकारी निषेध करता है।
और जिंदगी के दो हिस्से हैं, वह जिसको हम विधेय और निषेध, निगेटिव और पाजिटिव कहें। अगर मैं अपने तईं पाजिटिव हूं, तो समाज की तरफ निगेटिव रहूंगा, क्योंकि वह दूसरा हिस्सा है मेरा। अगर मैं अपनी तरफ निगेटिव हो गया, तो समाज की तरफ पाजिटिव हो जाऊंगा; वह मेरा दूसरा हिस्सा है। कहीं एक हिस्सा रहेगा। अब कहां रखने की बात है। अगर समाज को अच्छा करना हो, तो व्यक्ति के तल पर स्वीकृति होनी चाहिए। समाज को अगर सड़ाना हो, तो व्यक्ति के तल पर अस्वीकृति होनी चाहिए। इसलिए मेरी बात में निरंतर विरोध लगता है।
मुझे कई लोग आकर कहते हैं कि आप सुबह के ध्यान में सिखाते हैं कि सब स्वीकार कर लो और सांझ की सभा में कहते हैं, सब अस्वीकार कर दो। अब मैं क्या करूं? सुबह सूरज उगता है, सांझ ढलता है, इसमें मैं क्या करूं? अब सूरज से हम नहीं कहते कभी जाकर कि सुबह उगते हो और सांझ ढलते हो! विरोध है दोनों में। जब सुबह उगे, तो सांझ ढलते क्यों हो? नहीं, सुबह मैं यही कहता हूं कि स्वीकार कर लो, सांझ यही कहता हूं कि अस्वीकार कर लो। वे दोनों ही जिंदगी के हिस्से हैं।

एक और सवाल किसी ने पूछा है, इसको आखिरी मान लें।
पूछा है, मानव आज रुग्ण है, और मैं यह मानता हूं कि जब मनुष्य पैदा हुआ करोड़ों वर्ष पहले, तब आदमी अवश्य ही स्वस्थ रहा होगा। फिर मनुष्य का कौन सा अचेतन मन है, जिसने बीमारी के जंतुओं को आने दिया? और वे जंतु और बीज कौन से हैं, जिसने मनुष्य की अमानवीयता की शुरुआत होने दी?

ऐसी सब कल्पनाएं हैं। असल में कोई करोड़ों वर्ष पहले आदमी सुखी था, ऐसे ख्याल में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। और कोई आदमी को दुखी होना अनिवार्य है, इसकी भी कोई बात नहीं है। कुछ लोग समझ लेते हैं, वे सदा सुखी हैं, इस अर्थ में कि वे दुख को भी स्वीकार कर लेते हैं। जो नहीं समझते हैं, वे सदा दुखी हैं, इस अर्थ में कि वे दुख को अस्वीकार करने में ही दुखी होते चले जाते हैं। और ऐसा नहीं है कभी कि सारी मनुष्यता सुखी थी और सारी मनुष्यता कभी दुखी हो गई है। और ऐसा भी नहीं है कि कभी सब स्वस्थ थे और अब सब अस्वस्थ हो गए हैं। ऐसा कभी नहीं है।
हर एक की अपनी बीमारियां होती हैं, अपने दुख होते हैं। कभी दुख बदल जाते हैं, नई-नई बीमारियां पैदा कर लेते हैं, नये दुख पैदा कर लेते हैं। लेकिन सदा दुख है, सदा बीमारी है, सदा परेशानी है और सदा रहेगी। हम लाते रहेंगे। और एक तरफ से बचाएंगे और एक तरफ से पैदा हो जाएगा।

अभी ल्यूतश्योर ने इतनी मेहनत की, वैज्ञानिकों ने इतनी मेहनत की! अब अगर ल्यूतश्योर लौट आए, तो बहुत घबड़ा जाएगा, क्योंकि उसने आदमी को बचाने की कोशिश में कहा कि बच्चे मर जाएं। अब बच्चे ज्यादा हो गए हैं। अब उन्हें पैदा न होने दें, या पैदा हो जाएं तो उनको मारने का उपाय करें। तो भ्रूण-हत्या के लिए और गर्भपात के लिए विचार करना पड़ता है। और कोई आश्चर्य नहीं है कि अगर संख्या बढ़ती चली जाए, तो जिस तरह हम जन्म-निरोध की बात कर रहे हैं, इस तरह हम एक उम्र के बाद बूढ़े आदमी को मरने के लिए मजबूर करें! कोई आश्चर्य नहीं है। वह उसका दूसरा हिस्सा है, जो होगा। अगर यह नहीं रुकता है मामला, अगर हम बच्चों को नहीं रोक पाते हैं--नहीं रोक पा रहे हैं--तो दूसरा उपाय एक ही है, जैसा हम अट्ठावन या पचपन में रिटायर करते हैं, हम सत्तर साल में कहें कि आप जिंदगी से रिटायर हो जाइए, क्योंकि बच्चे आए चले जा रहे हैं और अब कोई बचाव का उपाय नहीं है। अब वैज्ञानिक जिसने कि बीमारियां बचाईं और दस बच्चों में से आठ बच्चे मर जाते थे, उनको बचा लिया। बहुत झंझट की बात हो गई। अब कौन कहे कि वह ठीक हुआ, क्योंकि अब हमको आठ मारने पड़ेंगे या रोकने पड़ेंगे, या कुछ करना पड़ेगा। इधर से हम इंतजाम करते हैं, उधर से कुछ बिखर जाता है।
यानी मेरा मानना यह है कि पूर्ण इंतजाम कभी नहीं हो सकता है, क्योंकि पूर्ण इंतजाम का कोई मतलब ही नहीं है। वह हमेशा ही एक तरफ हम इंतजाम करते हैं, दूसरी तरफ ठीक उसके विपरीत चीज खड़ी हो जाती है। क्योंकि जीवन जो है, वह सदा विपरीत को पैदा कर लेता है, इसलिए संतुलन है। और अगर तौल कर भी हम खोज सकें, तो वह बराबर उतनी ही रहेगी, जितनी कभी थी, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। यानी यह हो सकता है कि एक आदमी के पास आज फिएट कार है और आज से हजार साल पहले उसके बाप के पास सिर्फ बैलगाड़ी थी। बगल वाले के पास एक रथ था, अभी बगल वाले के पास एक इंपाला है। दोनों का फासला उतना ही है, जितना बैलगाड़ी और रथ का था, जितना फिएट और इंपाला का है। वह जो अनुपात है, वह उतना का उतना खड़ा है। रथवाले को देख कर जितना बैलगाड़ी वाला दुखी होता था, उतना इंपाला वाले को देख कर फिएट वाला दुखी हो रहा है! इंपाला आ गई, बैलगाड़ी हट गई है, रथ हट गया है। लेकिन, वह जो मामला है अपनी जगह खड़ा है--अनुपात वही है। और अनुपात में बड़ी भूल हो जाती है। आपके पास दस रुपये हैं, मेरे पास सौ रुपये हैं, तो आप गरीब और मैं अमीर। कल आपके पास सौ हो जाएं, तो मेरे पास हजार हो जाते हैं। फासला उतना ही होता चला जाता है। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।
मेरी अपनी समझ यह है कि जिंदगी जैसी सदा थी, वैसी ही है। उसके रूप बदलते हैं, आकार बदलते हैं, सब मामला वैसा ही है। उस सारे मामले में इतना ही फर्क पड़ सकता है कि व्यक्ति इसको स्वीकार करे या अस्वीकार करे। और उस दिन भी वही था, आज भी वही है। उस दिन जो बैलगाड़ी वाला था और उसने स्वीकार कर लिया होता कि अच्छा है तुम्हारे पास रथ है, हमारे पास बैलगाड़ी है और चल पड़ा होता अपनी बैलगाड़ी में, तो जितना सुखी हो जाता, उतना आज फिएट वाला, इंपाला वाले को देख कर कहता, अच्छा तुम्हारे पास इंपाला है हमारे पास फिएट है। चल पड़ता है। उतना ही, वही रस उपलब्ध हो जाएगा जो उसको हुआ होता, वह इसको उपलब्ध हो जाएगा।
जिंदगी वैसी ही है, सदा वैसी ही है। रुख क्या हम लेते हैं, इस पर निर्भर करता है। और दो तरह के रुख हैं, जैसा मैंने कहा। एक तो है कि हम निरंतर आकांक्षाओं को निरोपित करते चले जाएं, और एक है कि जो है, उसे हम जान लें, उसे हम पहचान लें, उसे हम देख लें। और जैसे ही हम उसे देखते हैं, अनिवार्यरूपेण उसकी स्वीकृति आ जाती है, क्योंकि सवाल ही नहीं है अस्वीकार करने का। ऐसे स्वीकृत उपलब्ध व्यक्ति को ही मैं धार्मिक व्यक्ति कहता हूं। और जब इतनी स्वीकृति होती है, तो शांति अपने आप भर जाती है। और उस शांति में हम बहुत कुछ देख पाते हैं, जो हमने अशांति में कभी भी नहीं देखा था।
और पहली बात आप को दोहरा दूं अंत में कि उस शांति में जो हमें दिखाई पड़ता है, वह कम्युनिकेबल नहीं है, उसको कहा नहीं जा सकता। उसको अंत में हम कुछ जानते हैं, जो कि शब्द में नहीं बंधता है तो तड़प सकते हैं, परेशान हो

सकते हैं, चिल्ला सकते हैं, मगर उससे कुछ होता नहीं है। हां, इतना ही हो सकता है कि शायद हमारी तड़फ को, पीड़ा को, कोई समझने की कोशिश करे। कोई सोचे कि जरूर इस आदमी ने कुछ देखा है। जैसे, एक गूंगा आदमी आ जाए और हमारे घर में चिल्लाने लगे जोर से, हाथ-पैर पटकने लगे और बताने लगे, तो हमें कुछ समझ में तो न आए लेकिन इतना समझ में आ जाए कि इस आदमी को कुछ हुआ है। वह अगर हाथ पकड़ कर बताने लगे बार-बार, या कहीं ले जाने लगे, तो शायद हम सोचें कि चलो देख लें, इस आदमी ने कुछ देखा है। कुछ कम्युनिकेट तो वह न कर पाए, लेकिन इतना कम्युनिकेट कर दे कि कम्युनिकेट नहीं कर पा रहा हूं और कुछ है। बस, इतना अगर हो जाए, तो शायद हम चले जाएं।
उतनी ही मेरी चेष्टा है, उससे ज्यादा मेरा भरोसा नहीं है। मैं शब्द का विश्वासी नहीं हूं, संवाद का विश्वासी नहीं हूं, बुद्धि का विश्वासी नहीं हूं। मेरे साथ दिक्कत इसलिए होती है कि मैं दिन-रात तो समझाता हूं कि विचार करो। बिना विचार के मत मानो; विश्वास मत करो। और फिर मैं कहता हूं, मैं बुद्धिवादी नहीं हूं। और मैं यह सब इसीलिए कहता हूं कि थका डालो बुद्धि को, खूब तर्क कर लो, खूब लड़ लो; आरग्यू कर लो। और यह थक जाए--एक दफा यह थक जाए और गिर जाए, तो तुम इससे बाहर हो जाओ। यह सांप की केंचुली की तरह पड़ी रह जाए और सांप बाहर निकल जाए। और यह निकलेगी न, अगर विश्वास कर लिया, क्योंकि यह थकेगी नहीं। यह निकलेगी न, अगर किसी की आस्था कर ली, क्योंकि इसको थकना जरूरी है। इसके निकल जाने के लिए।
एक तो वह विश्वास है, जो हम बुद्धि का बिना उपयोग किए ही पकड़ लेते हैं,
तो वह बिलो इंटलेक्ट है। और एक वह श्रद्धा है, जो बुद्धि के थकान पर उपलब्ध होती है, वह बियांड इंटलेक्ट है। और दोनों बिल्कुल अलग बातें हैं, मगर दोनों बिल्कुल एक सी मालूम पड़ सकती हैं। इसलिए कभी-कभी महाज्ञानी महामूढ़ मालूम पड़ सकता है। इसमें कोई ऐसी कठिनाई नहीं है। क्योंकि ये दोनों छोर, एक बुद्धि के नीचे है और एक बुद्धि के पार है। इन दोनों के व्यवहार भी बहुत दफा एक जैसे मालूम पड़ते हैं।

बंबई; 15 नवंबर, 1969

कहा कहूं उस देस की
तीसरा प्रवचन

असुरक्षा--प्रवाह--स्वीकार

यह स्वभाव क्या? और हमारे मस्तिष्क की जो गहरी पकड़ है, वह विपरीत स्थिति में भी मौजूद रहती है। कठिनाई तो यह है, क्योंकि जब मैं किसी से कहूं कि तुम प्रयास मत करना, तो नींद आ जाएगी। तो वह कहे कि न प्रयास करने से नींद आ जाएगी, यह पक्का है? यानी अब न प्रयास करना भी उसके चित्त में प्रयास का ही एक हिस्सा है। यानी ऐसे तो वह कहता है, मैं नहीं प्रयास करूंगा। अगर पक्का हो कि नींद आ जाएगी तो मैं प्रयास नहीं करूंगा। लेकिन करने का भाव उतना का ही उतना शेष है जितना कि प्रयास करने में शेष था, उतना न करने में भी शेष है। वह कह रहा है कि पक्का है न, नींद आ जाएगी, तो मैं प्रयास नहीं करूंगा। हां, वह यही कह रहा है कि मैं नहीं करूंगा पयास, तो लग तो रहा है कि उलटी बात कह रहा है। लेकिन वह, लेकिन उसका करने वाला जो चित्त है वह अब भी इतना ही है जैसा कि कल प्रयास करने में मौजूद था, अब वह न कहने में मौजूद होगा। यही जब तक वह यह भी कह रहा है कि मैं प्रयास न करूंगा अब, तब तक भी गड़बड़ है। वह इतना ही समझ ले कि प्रयास व्यर्थ है और चुप हो जाए और बात खत्म हो जाए।
वह तो जिस स्थिति की हम बात कर रहे हैं क्योंकि वह जो दूसरी स्थिति
है। वह इस स्थिति के विपरीत नहीं है। वह इस स्थिति का पूर्ण अभाव है। ऐसा नहीं है कि जब हम कह रहे हैं कि प्रयास करने से नींद न आएगी, तो हम यह कह रहे हैं न करने से आ जाएगी। हम यह नहीं कह रहे हैं। और भाषा कठिनाई पैदा करती है। प्रयास करने से नींद न आएगी--तब हम सिर्फ इतना ही कह रहे हैं कि प्रयास करने से नींद न आएगी। कि हम यह नहीं कह रहे हैं कि वह हम नहीं कह रहे हैं प्रयास न करने से नींद आ जाएगी।
मेरे खीसे में पैसा न कम पड़ जाए। यह डर उतना ही डर है जितना कि मैं डरा रहा कि मेरा पैसा खीसे का निकल न जाए। इस फियर में फर्क नहीं है जरा भी। और इसलिए सिक्योरिटी, निगेटिव सिक्योरिटी और इन सिक्योरिटी, इन तीन शब्दों पर ध्यान देना चाहिए। असल में सिक्योरिटी और इनसिक्योरिटी से बात नहीं करनी चाहिए, नहीं तो इनसिक्योरिटी का मतलब निगेटिव सिक्योरिटी हो। हां, अगेंस्ट नहीं है वह। और इसलिए आप इनसिक्योरिटी को मैनेज नहीं कर सकते। इनसिक्योरिटी का मतलब यह है कि हम कुछ भी मैनेज नहीं कर सकते, जो है वह।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, मैं नहीं कह रहा हूं कि वह आदत की स्थिति है। क्योंकि आदत की स्थिति
तो बिना प्रयत्न के कभी आएगी ही नहीं। अगर आपने आदत की बात की, तो वह तो बिना प्रयत्न के कभी आने वाला नहीं है। आदत में तो, न आदत में तो अनिवार्य, आदत में तो अनिवार्य प्रयत्न मौजूद है।

जब हम कहते हैं, आदत, स्थिति में उसमें तो अनिवार्य प्रयत्न होगा।

न, मैं यह नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि हमारी जिंदगी के सब प्रयत्नों को समझने का फल, नया प्रयत्न नहीं। हमने जिंदगी में जो-जो प्रयत्न किए हैं, अगर हम उनको समझे और पाएं कि वह विफल हो जाते हैं, और सुरक्षा उपलब्ध नहीं होती। हमारे सारे प्रयत्नों की विफलता का बोध, नया प्रयत्न नहीं है। हमारे प्रयत्नों की सारी, सारे प्रयत्नों की विफलता अंततः हमें अप्रयत्न में, नो एफर्ट में ले जाती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, यह मैं कह ही नहीं रहा हूं कि आप जाएं। आप गए तो, आप तो प्रयत्न करेंगे ही। जब हम पूछते हैं कि हम जाएं कैसे, तब तो प्रयत्न होगा ही।

वह प्राप्त कैसे हो?

नहीं, प्राप्त का प्रश्न ही नहीं है। न, मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि आप जब प्राप्त की, पाने की और आदत की भाषा में सोचेंगे, तो प्रयत्न से कभी मुक्त हो नहीं सकते, क्योंकि प्रयत्न पीछे रहेगा। न, मैं तो यह कह रहा हूं कि मैंने हजार बार प्रयत्न करके सोने की कोशिश की है और हर प्रयत्न पर मैंने पाया कि प्रयत्न असफल हुआ और नींद नहीं आई। मेरी हजार प्रयत्नों कि विफलता मुझे किसी नये प्रयत्न में नहीं ले जाती, मुझे अप्रयत्न में ले जाती है। अब सवाल यह नहीं है कि अब मैं क्या करूं सोने के लिए, अब सवाल यह है कि जो भी मैंने किया उससे नींद नहीं आई। यह जो मेरा बोध है कि जो भी मैंने किया उससे नींद नहीं आई। यह मेरा बोध अब मुझे और कुछ न करने देगा नींद लाने के लिए, और ऐसी स्थिति में नींद आएगी। यानी नींद लाना मेरे प्रयत्नों की असफलता मुझे अप्रयत्न में छोड़ देगी।
तो मैंने सुरक्षा का इंतजाम किया, जिसको प्रेम किया, चाहा कि उससे जन्म भर प्रेम रहे, लेकिन पाया कि वह विदा हो गया। फूल सुबह खिला, मैंने सोचा कि जिंदगी भर खिला रहे, लेकिन कि तो सांझ कुम्हला गया। तो मैंने प्रयत्न किए कि फूल को तोड़ कर मैंने तिजोरी में बंद कर लिया ताकि वह कुम्हला न पाए, लेकिन तब मैंने पाया कि जो सांझ कुम्हलाता वह सुबह ही कुम्हला गया। तो मेरे सारे प्रयत्न जब विफल हो जाएं।
यानी मेरी अपनी दृष्टि में मेरे प्रयत्नों कीविफलता अंततः मेरे अहंकार की विफलता है कि मैं कुछ न कर पाया। और अगर इसमें पीड़ा भी रह गई थोड़ी सी कि मैं कुछ न कर पाया, तो अभी विफलता पूरी नहीं हुई है। अगर इसमें थोड़ी पीड़ा का दंश है और ऐसा लग रहा है कि शायद मैं ऐसा करता तो हो जाता, वैसा करता तो हो जाता, तो अभी मैं कुछ और करूंगा, अभी मैं करने के बाहर नहीं जा सकता। नहीं, लेकिन एक ऐसी घड़ी आती है जिंदगी में कि जब आप सब कर चुके, सब कर चुके, सब कर चुके, अब अंततः आप अचानक पाते हैं कि करने का कोई फल नहीं, सब करना निष्फल हो गया। यह टोटल, यानी अब ऐसा भी न रहा कि मुझे दुख है कि निष्फल हो गया। क्योंकि दुख का मतलब है कि सफलता की आकांक्षा अभी भी कहीं शेष है। न, अब ऐसा हो गया है कि मैंने इसे सहज जाना कि मैं पागल था, कि मैं प्रयत्न कर रहा था, यह प्रयत्न सफल हो ही नहीं सकता है। यह जान कर मैं एक शांति की अवस्था को उपलब्ध हुआ। उसकी मैंने कोशिश अलग से कुछ न की। जो कोशिश चलती थी वह कोशिश विफल हो गई।
मैं दौड़ रहा था, दौड़ते-दौड़ते थक गया और मैंने पाया कि दौड़ने से कहीं नहीं पहुंचा और मैं खड़ा हो गया। यह खड़ा होना एक तरफ से नहीं है, यह सिर्फ दौड़ने की असफलता का फल है। इस खड़े होने को भी आपने पूछा है कि आप कैसे खड़े हो गए हैं, तो प्रयत्न की भाषा शुरू हुई। तो अगर कोई आदमी खड़ा हुआ है, तो अभी दौड़ेगा। क्योंकि जिसने कोशिश करके खड़ा हुआ है उसमें भी दौड़ने की गति मौजूद थी। अभी वह थोड़ी-बहुत देर में फिर दौड़ेगा। नहीं, लेकिन जिसका दौड़ना विफल हो गया है, जो इसलिए खड़ा नहीं हुआ कि खड़े होने से सफलता मिल जाएगी, जो इसलिए खड़ा हुआ कि अब दौड़ने का कोई अर्थ न रहा। दौड़ना ही फिर व्यर्थ हो गया है। खड़े होने में कोई सार्थकता है, ऐसा नहीं, लेकिन दौड़ना व्यर्थ हो गया है, इसलिए ख.ड़े हो जाना पड़ा। यह जो खड़े हो जाने की स्थिति है इसे हम किसी भी प्रयास से नहीं ला सकते। हां, हम सब प्रयास करते रहे और सब प्रयासों में झांकते रहें कि सब प्रयास असफल हो जाते हैं, तो वह असफलता का बोध अंततः... इस असफलता के बोध को मैं वैराग्य कहता हूं। यह मेरी दृष्टि मैं वैराग्य का जो अर्थ है, वह राग की असफलता का बोध है। वैराग्य राग का विपरीत नहीं है, वह उलटा नहीं है, वह सिर्फ राग असफल हुआ इसका सम्रग बोध है। इसमें अब वह दौड़ न रही। ऐसा नहीं है कि नई दौड़ शुरू हो गई और अगर नई दौड़ शुरू होती है तो वह वैराग्य नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह भी मैं नहीं कह रहा हूं, इसे भी मैं नहीं कह रहा हूं। गुड और बैड का अगर सोचेंगे तब बात बिल्कुल बदल जाएगी। न, यह जो भीखा जी ने कहा यही एक कंडीशंस है, गुड और बैड का सवाल नहीं है। यही जीवन की अवस्था है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, यह दूसरी बात। मैं आपसे बात कर लूं एक मिनट। जब हम सोचते हैं कि क्या यह अनिवार्यरूप से अच्छी अवस्था है, तब हम सोचते हैं कि दो तरह की अवस्थाएं हो सकती हैं, अच्छी और बुरी। मेरा मानना है कि अच्छी और बुरी, ऐसी दो अवस्थाएं नहीं होती हैं। गलत और सही, गुड और बैड नहीं, राइट और रांग। राइट और रांग में सोचेंगे तो आसानी पड़ेगी। क्योंकि गुड और बैड में एक वैल्यूएशन है, राइट-रांग में वैल्यूएशन नहीं है। न, वैल्यूएशन नहीं है। वह हमें गुड और बैड से ही जोड़ते हैं, इसलिए वैल्यूएशन है। राइट और रांग का कुल मतलब इतना है कि मैं इस दरवाजे से निकला, यह गुड नहीं है। न, मेरा मतलब, मेरा मतलब यह मैं दरवाजे से निकला और मैं दीवाल से निकला, तो दीवाल से निकलने से मेरा सिर टकराया और दरवाजे से निकलने से नहीं टकराया।

गुड और बैड मे मॉरल वैल्यू रही है, राइट और रांग में मॉरल वैल्यू नहीं होती?

हां, वही कह रहा हूं, वही कह रहा हूं, तो अगर, अगर हम गुड और बैड की भाषा में सोचें, हां, तो राइट और रांग की भाषा सोचना अच्छा है, सीधा और साफ है। न, वैल्यूएशन इसीलिए है कि वह गुड और बैड हमसे भारी है, वह राइट-रांग में भी घूस जाता है। वह वैल्यूज अलग नहीं रह पाती है। असल में राइट और रांग का कुल मतलब इतना है कि मैंने दो-दो जोड़े पांच। इसको बैड नहीं कह सकते, सिर्फ रांग कह सकते हैं। यानी इसमें कोई बैड का सवाल ही नहीं है। मैंने कोई न पाप किया है, न कुछ बुरा किया है। न मैं कोई इम्मॉरल एक्ट कर लिया हूं, सिर्फ मैं गलत जोड़ा हूं। और दो-दो चार जोड़े तो गुड नहीं है यह कुछ, यह सिर्फ राइट है। राइट का मतलब है यह है कि बस, जितना जोड़ना था उतना मैंने जोड़ा और जितना नहीं जोड़ना था उतना मैंने जोड़ा। कोई मॉरल वैल्यू साथ नहीं जोड़ता हूं मैं। यह जो मैं कह रहा हूं कि जिंदगी की अगर सारे प्रयत्न विफल गए हों सुरक्षा के, सिक्योरिटी की सारी कोशिश विफल हो गई हो, तो जो स्थिति रह जाएगी वह गुड नहीं है, राइट है। राइट--मतलब वैसी जिंदगी है।

एक्सेप्टेंस।

हां, एक्सेप्टेंस आ जाएगा उसमें, एक एक्सेप्टेंस होगा। फूल सांझ कुम्हलाएगा तो मैं उसे स्वीकार करूंगा, उसी तरह जैसे सुबह उसका खिलना स्वीकार किया था। और मैं यह जानूंगा कि उसके खिलने में उसका मुरझाना छिपा था। और यह भी धन्यभाग है कि वह सुबह खिला और सांझ मुरझाया, इतना फासला भी कुछ कम नहीं है। इसके लिए मैं ग्रेटिट्यूट और अनुग्रह अनुभव करूंगा। तब उसका मुरझाना मेरे लिए पीड़ा नहीं है। बल्कि इतनी देर से मुरझाया यह मेरे लिए आनंद है। क्योंकि यह भी हो सकता था कि सुबह खिलता और मुरझाता, और यह भी हो सकता था कि खिलता ही न, यह सब संभव था, तब मैं अपनी आकांक्षा नहीं थोपूंगा। यानी जो मैं कह रहा हूं वह यह, सुबह फूल खिलता है वह सांझ मुरझाएगा। मैं अपनी आकांझा थोपता हूं कि वह कभी न मुरझाए, तब मेरी आकांक्षा और यथार्थ में तालमेल टूट जाता है।
मेरा आपसे प्रेम हुआ, अब मैं कहता हूं कि विवाह कर लूं, जिंदगी भर हम साथ रहें। यह विवाह प्रेम का सहज फल नहीं है, यह किसी और आकांक्षा का फल है। क्योंकि प्रेम से विवाह का क्या लेना-देना, प्र्रेम काफी हो सकता था, लेकिन मुझे डर है कि कल टूट जाए, परसों टूट जाए, तो कल और परसों की सुरक्षा आज कर लेनी है कि टूट न पाए। इस समाज को गवाह बना लेना है, कानून को गवाह बना लेना है कि हम यह... करते हैं कि जिंदगी भर साथ रहेंगे। प्रेम कुल इतना

कह रहा था कि अभी साथ रहना आनंदपूर्ण है और विवाह कहता है हम जिंदगी भर साथ रहें और जिंदगी भर आनंदपूर्ण ढंग से साथ रहेंगे। अब हम आकांक्षाएं थोप रहे हैं। यह आकांक्षाएं फूल को न कुम्हलाने देने की आकांक्षा है। इनका यथार्थ से तालमेल टूट गया है। अब हम एक तरह के आदमी होंग, और जिंदगी एक तरह की होगी और उसमें कभी तालमेल होने वाला नहीं है और वह दुख और वह पीड़ा, उसको मैं रांग कह रहा हूं, बैड नहीं। वह दुख और पीड़ा और मैं कहता हूं, किसी को अच्छी लग रही हो तो झेले, इसमें कुछ हर्जा भी नहीं है, कुछ पाप नहीं है। उसमें कुछ पाप नहीं है कि उसको हम कंडेम करें कि तुम गलत कर रहे हो, उसे अच्छा लग रहा है, वह झेल रहा है। लेकिन किसी को अच्छा लग नहीं सकता। क्योंकि दो और दो को पांच जोड़ लेना, एक भीतरी दंश और पीड़ा है जो कांटे की तरह चुभती रहेगी।
यह जो मैं कह रहा था प्रताप, वह मैं यह कह रहा था कि सुरक्षा की खोज है और। और यह इनका ख्याल यह था कि सुरक्षा की खोज के कारण सुरक्षा पैदा हो रही है, वह मैं नहीं मानता हूं। मेरी अपनी समझ यह है कि असुरक्षा है। वह जीवन का तथ्य है। असल में जीवित होने का लक्षण वही है। सिर्फ मृत सुरक्षित हो सकते हैं। जीवित तो कभी सुरक्षित नहीं हो सकते हैं और जितना जीवंत व्यक्तित्व होगा उतना असुरक्षित होगा। क्योंकि जितने जोर से मैं जीऊंगा उतने ही जोर से मरने की संभावना उपस्थित हो जाएगी।
... ने एक छोटा सा वाक्य लिखा है। उसने लिखा है कि मुझे सदा ऐसा लगा कि अगर जीना ही है तो ऐसे जीना चाहिए जैसे मशाल सब तरफ से जला दी गई हो। एक तरफ से नहीं जला दी गई है, सब तरफ से जला दी गई है, सब दोनों छोरों पर आग लगा दी गई है। सब तरफ से जला दी गई है। उसके किसी मित्र ने उसको कहा, लेकिन तब मशाल बड़ी जल्दी जल जाएगी। जो रात भर जल सकती थी, वह हो सकता है सांझ ही जल जाए। तो उसने कहा कि अगर ठीक से जलने का मजा लेना है तो बुझने की उतनी ही शीघ्रता की तैयारी भी कर ले। वह जो तीव्रता से जीना है उसमें तीव्रता से बुझने की... है। लेकिन मजा यह है कि जो तीव्रता से जलने का मजा ले ले, वह तीव्रता से बुझने का भी मजा ले सके, क्योंकि तीव्रता का मजा है... सवाल बुझने और जलने का नहीं है। धीरे-धीरे बुझना भी दुखद है, धीरे-धीरे जलना भी दुखद है। मरे-मरे जलना हुआ न, धीरे-धीरे जलने का मतलब और मरे-मरे मरना भी हुआ। और इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि अगर जवान आदमी मरे तो शीघ्रता से मर जाता है और नब्बे वर्ष तक जिंदा रह जाए तो फिर लंबा बहुत धीमा होगा, फिर मरना बहुत धीमा होता है। क्योंकि मर एकदम वही सकता है जो एकदम जी रहा था।
...

ज्योति तो बहुत जोर से जली थी, वह बहुत जोर से बुझ भी सकती है। वह जोर
से एक ही शक्ति का लक्षण है। मैंने कहाः आदमी नब्बे या सौ साल तक जिंदा रह जाए तो फिर उसका मरना भी क्रमिक होता है। फिर वह दस-पंद्रह साल के लंबे अरसे में फैल कर मर पाता है क्योंकि मरने की तीव्रता की क्षमता भी उसमें नहीं रह जाती।
तो सुरक्षा की खोज बहुत गहरे में जीवन का भय है। यानी हम जीना नहीं चाहते इसलिए हम सुरक्षा खोजते हैं। अगर इसे इस भाषा में समझो की सुरक्षा की खोज स्युसाइडल है तो बहुत आसानी हो जाए। इस भाषा में अगर हम सोचें तो सुरक्षा की खोज आत्महत्या का आग्रह है। जैसा मैं आज जी लिया हूं, मैं वैसा ही सदा जीने के लिए कष्ट कर लेता हूं। नहीं तो मैं कल को मरा जा रहा हूं, कल के लिए जिंदा रहने की बात नहीं। मैंने बच्चुभाई को कहा कि मैं आपको प्रेम करता हूं तो बच्चुभाई और मैं दोनों तय करते हैं कि हम कल भी प्रेम करेंगे। उसका मतलब यह हुआ कि मेरा आज कल को तय करेगा। और आज तो कल मर चुका होगा और कल को तय करेगा मरा हुआ। जीवित को तय करता रहेगा सदा। दस साल पहले मैंने किसी से तया किया था कि मैं प्रेम करूंगा और वह दस साल से मुझे प्रेम करना पड़ रहा है क्योंकि वह मैंने तय किया था। तो दस साल मेरे मर गए। दस साल मैं प्रेम नहीं कर पाया, वह पुराना आश्वासन ही मुझे पकड़े है। वह डैड जो है वह मेरे ऊपर भारी है और वह मुझे पकड़े हुए चला जा रहा है। कल का अगर हम आज इंतजाम करते हैं तो हम कल के लिए एक अर्थ में मर रहे हैं और बहुत गहरे में अर्थ भी यही है कि कल के लिए हम इंतजाम ही इसीलिए करते हैं कि हमें पक्का

भरोसा नहीं है कि कल हम इतने जीवित होंगे तो कल के लिए हम आज इंतजाम कर लेते हैं। आज ही पक्का कर लेते हैं कल के लिए कि कल कैसे जीएंगे? कैसे मिलेंगे? किस मकान में रहेंगे? कितना धन होगा? कैसे कपड़े होंगे?
यह सारा का सारा इंतजाम हमारा आत्मघाती रूख है। और दूसरी बातः इस इंतजाम से हम इंतजाम कर नहीं पाते, बड़ा मजा यह है कि इंतजाम भी हो जाता तो भी ठीक था। इंतजाम भी हो जाता तो भी ठीक था, वह हो नहीं पाता। तो जिंदगी की अड़चन, जिंदगी के जीने की अड़चन अलग बनी रहती है, वह है, और यह इंतजाम की अड़चन अलग हो जाती है। यह दोहरी अड़चन उसके ऊउपर खड़ी हो जाती है। इन दोहरी अड़चनों के बीच मनुष्य के चित्त का तनाव है, वह सारी एंग्विश इस दोहरे तनाव में है। इतना तनाव जो मनुष्य के भीतर है, वह उस तनाव का कारण ही यह है कि जिंदगी एक ढंग से बहती है और हमारी आकांक्षा जिंदगी को दूसरे ढंग पर ढालना चाहती है। बस, तब खिंचाव शुरू हो जाता है।
इनसिक्योरिटी में जीने का कुल मतलब यह है कि जिंदगी जैसी है हम उसे जीते हैं। और हमारा उसमें कोई ऊपर से थोपने का भाव ही नहीं है, क्योंकि थोप कर हमने देखा और इम असफल हुए हैं। और असफलता पूर्ण हो गई है। इसलिए मैं मानता हूं कि गलत जीने का भी एक फायदा है कि वह गलत जीने को असफल कर जाता है, विफल कर जाता है। और जो लोग अगर ठीक से, गलत ढंग से नहीं जीए हैं, ठीक से गलत ढंग से नहीं जीए हैं, तो वे बहुत कठिनाई में पड़ जाते हैं। उनको अभी विफल तो हुआ नहीं, अभी उनको ख्याल तो यह है कि कोशिश करने से नींद आ जाएगी और किसी की बात सुनने चले गए हैं, जो कहता है कि कोशिश करने से नींद न आएगी। अब वे और कठिनाई में पड़ गए हैं। यह उनको अनुभव से ही जानना होगा कि कोशिश करने से नींद नहीं आती है, प्रयत्न व्यर्थ है। और तब वह ऐसा नहीं पूछेंगे कि फिर क्या करें क्योंकि फिर क्या करना है, पूछने का मतलब है कि वह अभी प्रयत्न की भाषा उनके मन में जारी है! वह इतना समझ लेंगे कि प्रयत्न व्यर्थ है और चुपचाप उठ जाएंगे।

चुपचाप जीने से आपका क्या मतलब है?

अगर मतलब खोजेंगे तो फिर कठिनाई शुरू होती है क्योंकि चुपचाप जीने का मतलब है जिंदगी आई हुई है, जिंदगी मिली हुई है, जिंदगी जैसी आ रही है, जिंदगी जैसी आ रही है उसे वैसा ही जीएं और उतना ही जीएं। आप मेरे पास बैठे हैं, और मैं प्रीतिकर लग रहा हूं आपको, तो अच्छा है कि मेरे इस प्रीतिकर होने की जीएं। नहीं, लेकिन आप इसको जीने की फिकर नहीं करते। आप यह कहते हैं कि कल भी इसी वक्त मिलेंगे न। आप कल की फिकर कर रहे हैं। आप कह रहे हैं, परसों भी इतना ही प्रेम देंगे न? अभी जिंदगी मिली है, कोई पास खड़ा है, वह आपको प्रेम दे रहा है, आप सुख में हैं, एक आनंद का अनुभव हो रहा है। लेकिन मन आपका अपेक्षाओं में भाग गया है, जीने में नहीं है। वह कहता है, कल, परसों का भी इंतजाम कर लो।

यह स्वभाव है क्या?

नहीं, स्वभाव नहीं है। स्वभाव नहीं है। स्वभाव नहीं है। असल में हमारे मन में चारों तरफ असुरक्षा तो है ही। यह तो पक्का ही है कि कल का भरोसा नहीं है कि कल मैं आपको मिलूंगा, यह पक्का नहीं है। इसको हम पक्का कर लेना चाहते हैं। भूल इसलिए है कि जो पक्का नहीं है, उसे पक्का किया ही नहीं जा सकता, जो भूल है वह यह, भूल यह नहीं है कि स्थिति तो यह है ही। अगर मैंने आज आपको प्रेम किया है तो कल पक्का नहीं है कि कल मैं आपको प्रेम कर सकूं। और अगर इसको हमने पक्का किया तब तो बिल्कुल ही पक्का नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, असल में, असल में, जब हम इसे ऐसा पूछते हैं कि क्या यह सत्य है? क्या यह संभव है? क्या यह हो सकता है कि आदमी असुरक्षा में जी सके? तो मैं

इसे दूसरी तरफ से लेना चाहूंगा। मैं यह कहना चाहूंगा कि सुरक्षा में रहने की कोशिश सत्य हुई है? नहीं, मैं इसको इस तरह नहीं लेता। मैं इस तरह पूछना चाहता हूं कि इसको उलटा सत्य हुआ है जिसे हम कह रहे हैं? सुरक्षा की जो हमने इंतजाम और व्यवस्था की है क्या उससे जीना सत्य हुआ है? क्या हम जी पाए हैं? अगर वह असत्य हो गया है, तो यही जो मैं कह रहा हूं उसकी सत्यता है। इसकी अपनी अलग से सत्यता नहीं है। अगर आपके प्रयत्न से आप नींद नहीं ला पाए हैं, आप मुझसे पूछते हैं क्या मैं बिना कोशिश करे सो जाऊंगा, यह सत्य है? तो मैं कहता हूं, यह, यह इसकी सत्यता मत पूछें। इसकी सत्यता का सवाल ही नहीं है। क्योंकि सत्यता का सवाल सदा प्रयत्न का होता है। प्रयत्न सत्य और असत्य हो सकता है। अप्रयत्न, नो-एफर्ट में सत्य और असत्य का प्रश्न नहीं है। क्योंकि जिसे हमने किया ही नहीं, वह हो सकेगा कि नहीं हो सकेगा, हम कैसे पूछें? जो हमने किया है, उसके संबंध में रिलवेंट है यह बात पूछना कि यह होगा कि नहीं होगा? तो मैं यह कह रहा हूं कि वह जो हम कर रहे हैं क्या वह असत्य हो गया है? हमें दिखाई पड़ा है कि वह असत्य है, अगर वह असत्य दिखाई पड़ गया है, उसकी असंभावना, उसकी एब्सर्डिटी हमें दिखाई पड़ गई है।
झेन में वे कोआन का प्रयोग करते हैं। उस कोआन का जो आप पूछ रहे हैं वह, उसमें बड़ा सार्थक बात है। वह एक एब्सर्ड पहेली दे देंगे किसी को, जो सत्य ही नहीं है। जैसा उन्होंने कह दिया है कि एक साधक को कहा है कि तू इस पर ध्यान कर कि एक हाथ की ताली कैसे बजेगी? तू समझ कर आ कि एक हाथ की ताली कैसे बजेगी? अब वह ध्यान करता है तो वह सोचता है कि पैर पर हाथ को मारने से बज जाएगी। वह भागा हुआ गुरु के पास आता है, वह कहता है कि पैर पर हाथ मार देंगे। तो वह कहता है, पागल, वह पैर तो दूसरा हाथ हो गया। हम तो कहते हैं एक हाथ की ताली। उसमें दूसरे का उपाय ही नहीं है। अब तू दुबारा यह सोच कर मत आना, दूसरे की मौजूदगी का उपाय ही नहीं है। एक हाथ की ताली ही बजानी है, अकेले हाथ की, जहां दूसरा कोई भी नहीं है, अकेला हाथ ही है और ताली बजानी है। तो वह फिर सोचता है और कुछ उत्तर खोज लाता है, फिर कोई उत्तर खोज लाता है, यह चलता है। लेकिन एक क्षण में पूरे-पूरे प्राणों में उसे लगता है कि यह असत्य है, यह एक हाथ की ताली बज नहीं रही। यह जो है, असंभव है, यह एब्सर्ड है। तब वह यह भी कहने नहीं आता है कि नहीं बज सकती। क्योंकि यह कहना भी तभी तक अर्थपूर्ण है, जब तक बज सकती हो। तब वह आते ही आते गुरु के सामने हंसने लगता है या चुप बैठ जाता है। और गुरु उससे पूछता है क्या हुआ उस एक हाथ की ताली? वह चुप ही बैठा रहता है। वह यह भी नहीं कहता कि नहीं बज सकती है। क्योंकि नहीं बज सकती है, कह कर अर्थ तभी होता है कुछ जब बज सकती होती। नहीं, वह असत्य ही है।
और अगर हम जिंदगी को समझने जाएं, तो हमने जिंदगी में बहुत से कोण खड़े
कर लिए हैं। जैसे सुरक्षा। सुरक्षा एक हाथ की ताली है जो इतनी ही असत्य है जितनी एक हाथ की ताली असत्य है। सुरक्षित हम हो नहीं सकते। क्योंकि जन्म के साथ मृत्यु खड़ी है। वह हम जन्में नहीं कि मरना शुरू हो गया है। इधर जन्में नहीं कि उधर मरना शुरू हो गया है। शायद मरना और जन्मना एक ही साथ हो गया है।
वह जो पहले दिन का बच्चा पैदा हुआ है, वह भी एक दिन मर चुका है। घंटा भर
मर चुका है, घड़ी भर मर चुका है। इधर वह जी रहा है, इधर वह मर रहा है। इधर से गिने तो जन्मदिन मालूम पड़ता है, उधर से गिने तो मृत्यु की यात्रा मालूम पड़ती है। अब अगर हमने सोचा कि हम मरेंगे न, तो हम असत्य को सोच रहे हैं। तो मैं यह कह रहा हूं कि जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं, जो हमें सत्य मालूम पड़ती है, वह बिल्कुल असत्य है। और अगर यह हमें असत्य दिखाई पड़ जाए तो वह जो दूसरा जिसकी मैं बात कर रहा हूं, उसके बाबत हम यह नहीं पूछेंगे कि वह सत्य है या असत्य है, वह है ही। उसके अलावा उपाय ही नहीं। यानी मरना मरने से बचना असत्य है तब फिर मरने के साथ ही जीना होगा। उसको सत्य पूछने का सवाल नहीं है, उपाय ही नहीं है कोई, वही है। यानी हमें ऐसे जीना होगा जहां कि मरना स्वीकृत रहेगा। हम, हमारा मन होता है कि हम कैसे स्वीकार करके जीएं मरने को, यह सत्य कहां है कि हम मरने को... कि मैं आपको प्रेम करूं और यह मान कर चलूं कि यह प्रेम का फूल भी कुम्हला सकता है, क्योंकि सब फूल कुम्हला

जाते हैं। असल में फूल ही कुम्हलाते हैं, कांटे तो बहुत देर टिक जाते हैं। तो अगर यह प्रेम है, फूल है और कांटा नहीं है, तो यह कुम्हलाएगा ही। और जितना बड़ा फूल है और जितना कोमल है और जितना सुगंधित है और जितना खिला है उतना जल्दी कुम्हला जाएगा। मन तो मानने को राजी नहीं होता, मन तो कहता है, प्र्रेम। और कुम्हलाएगा? नहीं, हम ऐसा मान कर फिर प्रेम ही नहीं कर पाएंगे। फिर सत्य ही नहीं कि हम प्रेम कर पाएं। लेकिन सत्य हो या नहीं, यह सवाल नहीं, ऐसा है।...
सच, नहीं यह सवाल नहीं है कि हम ऐसा कर पाएंगे कि नहीं कर पाएंगे, ऐसा
है ही। अब आप कुछ करें या न करें, फूल कुम्हलाएगा, यह फूल कुम्हलाएगा। आप चाहें आंख बंद करें, चाहे पीठ फेरें, चाहे भागें फूल से, चाहे कुछ भी करें। आपके कुछ भी करने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। फूल खिला है, फूल कुम्हलाएगा, और हमें यह स्वीकार करके जीना पड़ेगा। फूल को जब वह खिला है तो उसके खिले होने में हमें उसके कुम्हलाने को स्वीकार करके जीना होगा। और इस स्वीकृति में अगर जरा सी भी अस्वीकृति छिपी है, तो हम फूल के खिलने को भी न जी पाएंगे और फूल कुम्हला ही जाएगा। जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि जिंदगी ऐसी है। आपकी स्वीकृति, अस्वीकृति से कुछ फर्क नहीं पड़ता, सिर्फ आपके जीने की कठिइयां कम और ज्यादा हो सकती हैं।

परंतु फूल के खिलने से आपको आनंद आया होगा तो यह बिल्कुल मुमकिन है कि बिल्कुल वही है, रियलिटी, यानी कि उसके कुम्हलाने से आपको दुख होगा। उससे जो आप प्रेम करेंगे तो प्रेम का वास्तव ही ऐसा है आपके दिल में ऐसा होगा कि यह प्रेम चालू रहे, उससे जो वीतराग की स्थिति कहते हैं, वह कहते हैं, प्रेम भी वह न करो तो दुख भी न होगा, पर आपकी जो है वह उससे अलग बात है?

बिल्कुल ही अलग बात है, बिल्कुल ही अलग बात है, वह तो बिल्कुल ही अलग बात है। ठीक है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

ठीक है न, ठीक है न, मैं दुखी न हूं यह नहीं कह रहा हूं। अगर मैं यह कहूं
तो गड़बड़ हो जाएगी। मैं तो यह कह रहा हूं कि जब मैंने फूल के खिलने से सुख लिया है तो मेरी दुख की पूरी तैयारी है, उसके कुम्हलाने पर मैं दुख लूंगा। और यह तो बड़ी एब्सर्ड बात होगी कि सुख मैं ले लूंगा तो दुख कौन लेगा? मैंने जब फूल के खिलने से सुख लिया है तो मैं फूल के कुम्हलाने पर दुखी होने को तैयार हूं, इसकी स्वीकृति को मैं यह कह रहा हूं। यानी हम क्या करते हैं, हम कहते हैं, या तो हम सुख को ही स्वीकार करेंगे कि फूल के खिलने से सुख मिले और तब हम उसके मुरझाने को इंकार करेंगे ताकि हमें दुख न मिले। और या फिर दूसरा उपाय जो आप कह रहे हैं वह हमारी समझ में आता है कि फिर यह कि फूल कि फिकर ही छोड़ दो, ताकि न सुख मिलेगा, न दुख मिलेगा। या तो हम हां, या तो हम सुख ही लेंगे और कुम्हलाने न देंगे फूल को, या तो मैं किसी स्त्री को प्रेम करूंगा और उसे छूटने न दूंगा अपने से, उसको कुम्हलाने न दूंगा और या फिर मैं, ...

वह असंभव ही है वह होना कि दुख न हो?

हां, वह तो असंभव है, असंभव है, वही मैं कह रहा हूं। वह अगर असंभव है तो फिर जो, जो संभव है जो है, संभव भी क्या है? कहना चाहिए जो है, है यह कि फूल खिलेगा और सुख देगा और फूल कुम्हलाएगा और दुख देगा, मैं दोनों को स्वीकार करता हूं। जिस तरह सुख को स्वीकार करता हूं, उस तरह दुख को स्वीकार करता हूं। न मेरा दुख का इंकार है, न मेरा सुख का इंकार है। जिसको हम भोगी कहते हैं वह दुख का इंकार कर रहा है और जिसको हम त्यागी कहते हैं वह सुख का इंकार कर रहा है। वे दोनों चुनाव कर रहे हैं। दोनों की च्वाइस है। और इसीलिए दोनों में बहुत बुनियादी फर्क नहीं है, वह आधा-आधा स्वीकार करते

हैं। वे कहते हैं कि हम यह, हम यह सुख के साथ डर है दुख का। तो मेरी अपनी दृष्टि में जिसको हम त्यागी कहते हैं वे भोगी से भी ज्यादा भयभीत आदमी हैं। वह उस दुख के डर के कारण जो सांझ फूल के कुम्हलाने से होगा, सुबह फूल के खिले होने को इंकार कर रहा है। सांझ के डर से कि सांझ फूल कुम्हला जाएगा, वह सुबह ही कहता है हम खिले हुए फूल को ही न देखेंगे क्योंकि सांझ कुम्हलाने का डर है। वह मेरी दृष्टि में भोगी से भी ज्यादा डरा हुआ आदमी है, उसका डर और भी भविष्य का है। यानी यह भोगी कम से कम अभी फूल का सुख ले रहा है, सांझ रोएगा। लेकिन सांझ को त्यागी खुश होगा कि हम सुबह से ही रो रहे हैं, तुम गलती किए, तुम सांझ को रो रहो हो, हम सुबह से रो रहे हैं। और अगर रोने से बचना हो तो सुबह से ही रोने की स्थिति में होना चाहिए। मगर मैं जो कह रहा हूं, मैं यह नहीं कह रहा कि...

सुख की जो खोज है वह तो यह है कि यह जो सुख है वह दुख में मिलता है। वह सुख और दुख, वह दोनों का त्याग करे। जिसमें सुख पाने, जिसमें कभी दुख होता ही नहीं।

समझ गया हूं आपकी बात। ऐसा सुख जो कभी दुख में परिणित नहीं होता, असंभव है, सत्य नहीं है। और अगर ऐसा कहीं कोई सुख है तो उसमें सुख का बोध ही नहीं हो सकेगा। सुख का बोध ही दुख की पृष्ठभूमि में है। अगर ऐसा कोई स्वास्थ्य है कहीं जहां बीमारी न होती हो, तो वहां स्वास्थ्य का कोई बोध न होगा। अगर ऐसा कहीं कोई जगत है जहां प्रकाश और अंधकार नहीं है, तो वहां प्रकाश का कोई पता न होगा। यानी उससे तो गहरे से गहरे अंधकार में भी प्रकाश का पता होगा, उतना भी वहां पता नहीं होगा। यह जो ख्याल है त्यागी का कि हम ऐसे सुख की खोज में हैं, वह असल में वह यही कह रहा है कि हम उस फूल की खोज में हैं जो खिलता तो हो लेकिन मुरझाता न हो। लेकिन प्लास्टिक का ही फूल हो सकता है फिर। फिर बिल्कुल प्लास्टिक का फूल होगा और एकदम कल... वह खिलता भी नहीं एक अर्थ में। वह तभी मुरझाने से बच सकता है जब खिलता न हो। हमारी कठिनाई क्या है कि खिलने की ही प्रक्रिया का हिस्सा है मुरझाना। खिलना और मुरझाना दो घटनाएं नहीं हैं। हां, दो घटनाएं नहीं हैं, एक ही घटना को दो तरफ से देखने के ढंग हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

एक ही... दूसरा चालू है ही, यानी कभी भी ऐसा नहीं है कि एक मौजूद है, दूसरा उसके साथ तत्काल मौजूद है ही। वह साइमलटेनियस है। वे एक ही साथ युग-पथ हैं। हां, हम घटनाएं अलग... मुश्किल हो जाती है। जन्मते हैं हम एक दिन और मरते हैं सत्तर साल बाद। तो जन्म को, मृत्यु को हम सुविधा से अलग कर लेते हैं। लेकिन सच्चाई ऐसी नहीं है। सच्चाई ऐसी है कि जिस दिन हम जन्में उस दिन से ही मरना शुरू। और जिस दिन हम मर रहे थे, उस दिन भी जन्मना जारी था। वह दोनों एकसाथ घटनाएं घट रही थी। वह एक ही साथ चल... वह दोनों पैर थे दायां-बायां। वह जो हम चल रहे थे, वह न हम बाएं पैर से चल रहे थे, न दाएं पैर से चल रहे थे। और जो हम रुक गए हैं, वह न हम दाएं पैर से रुक गए हैं, न बाएं पैर से रुक गए हैं। वे दोनों पैर चलते थे, वे दोनों पैर रुक गए हैं। वह जन्मना और मरना चलता था और जन्मना और मरना रुक गया है। मृत्यु के दिन जन्मना और मरने की जो क्रिया थी वह दोनों क्रियाएं रुक गई हैं। और जन्म के दिन वह दोनों क्रियाएं शुरू हुई थीं। ऐसा नहीं था कि यह एक क्रिया थी और वह दूसरी क्रिया थी।
जब हम जीवन को ऐसा देख पाएं तो सुख और दुख भी ऐसे ही हैं। असल में जब फूल खिला था तभी दुख भी शुरू हो गया था। मैं किसी के घर में रुकता हूं तो इधर मुझे बहुत हैरानी हुई। एक घर में मैं रुका, तो उस घर की गृहिणी, जिस दिन मैं पहूंचा तो उसने उसी दिन से वह उसने रोना शुरू कर दिया, तो मैंने पूछा कि बात क्या है? तुम दुखी क्यों हो? उसने कहाः आप जब आते हैं, तभी से मुझे आपके जाने का भय शुरू हो जाता है कि बस अब जाना है--कल चले जाएंगे, परसों

चले जाएंगे, तो जाने का भय शुरू हो जाए। तो उसके पति ने कहा कि तू बिल्कुल नासमझ है, जब जाएंगे तब जाएंगे, जब आए जब आए। पर मैंने उनको कहा कि नहीं, वह कहती तो वही ठीक है, कि आना जो है वह जाने की शुरुआत है। लेकिन उसकी भूल इसमें नहीं है। उसकी भूल इसमें है कि जब मैं चला जाता हूं तब तुझे मेरा आना भी दुबारा दिखाई पड़ता है कि नहीं? वह मुझे दिखाई नहीं पड़ता। तो फिर मैंने कहाः फिर तेरी भूल है। भूल यहां नहीं है, भूल वहां है, क्योंकि अगर आने में जाना छिपा है तो जाने में किसी न किसी गहरे अर्थ में आना छिपा होगा। वे दोनों क्रियाएं अलग नहीं हो सकतीं।
जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि ऐसी जिंदगी है, सत्य या असत्य नहीं है, ऐसा है। और यह जो होना है, यह जो सचनेस, यह जो जिंदगी का ऐसा होना है इसकी प्रतीति है। हां, इसकी प्रतीति, इसकी प्रतीति। एक्सेप्टेंस में भी कहीं न कहीं हमारा... छिपा रहता है। वह शब्द थोड़ा अच्छा नहीं है। उसमें जब हम कहते हैं एक्सेप्टेंस, तो कहीं कोई दंश है पीछे कि हमें स्वीकार करना पड़ा है। हां, कहीं कुछ है बात उसमें। वह शब्द बहुत अच्छा नहीं है। इसलिए, इसलिए बुद्ध ने बहुत अच्छा शब्द प्रयोग किया है। उन्होंने जो शब्द प्रयोग किया है वह है तथाता। थिंग्स आर सच। न, ऐसा नहीं है कि स्वीकार करते हैं, न, ऐसा है ही। ऐसा है कि जन्म में मृत्यु छिपी है, ऐसा है कि सुख में दुख छिपा है, ऐसा है कि मिलने में बिछुड़ना छिपा है, ऐसा है। इसकी स्वीकृति और अस्वीकृति का भी जिम्मा हम पर कहां है? स्वीकार तो हम तब करें जब हम अस्वीकार कर सकते होते। यानी इसमें स्वीकार में भी कहीं हम कुछ कर रहे हैं, वह गलती हो जाएगी। नहीं, कुछ करने का उपाय ही नहीं है, ऐसा है और ऐसे होने का जो बोध हमें घेर ले वह एक्सेप्टेंस है। वह बहुत गहरे में एक्सेप्टेंस है, किया गया नहीं, हुआ, दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। दूसरा रास्ता ही नहीं है। ऐसी स्थिति में सुरक्षा-असुरक्षा, सुख और दुख, जन्म और मृत्यु, इन्हें हम अलग-अलग नहीं तोड़ते। ये सब इकट्ठी हो जाती हैं।
और हमारी जिंदगी का सारा कष्ट ही यह है कि हम सब चीजों को तोड़-तोड़ कर देखते हैं और दो हिस्से कर लेते हैं। जो दो हिस्से जिंदगी में एक हैं उन्हें हम विचार में दो कर लेते है, और इसलिए विचार जिंदगी के करीब कभी नहीं पहुंच पाता। वह पहुंच ही नहीं सकता। उसकी सारी उपद्रव यह है वह चीजों को दो हिस्सों में तोड़ लेता है। चीजें दो हिस्सों में टूटी हुई नहीं हैं, और विचार में सदा टूट कर आती है। सुख अलग आता है, दुख अलग आता है। मित्रता अलग आती है, शत्रुता अलग आती है। अंधेरा अलग आता है, प्रकाश अलग आता है। विचार दो खंड कर लेता है। और इसलिए विचार में जीने वाला खंडित जीएगा कि अखंड नहीं जी सकता। और इसलिए जो आप कहते हैं... कि इंटेलेक्चुअली समझ में आ जाता है। नहीं, इंटेलेक्चुअली जो समझ में आता है, वह बड़ा ही खतरनाक है। क्योंकि इंटेलेक्चुअली समझ में ही तब आता है जब वह दो में तोड़ लेता है। इसलिए इंटेलेक्चुअल समझ, नासमझी से भी खतरनाक है।

उससे ही मैं कहता था कि हम समझ लेते हैं कि नींद नहीं आती है, इतने प्रयत्नों के बाद भी, तो आप कहते हैं कि बिना प्रयत्न की स्थिति...

मैं यह नहीं कह रहा हूं। हमारी कठिनाई क्या है? न, न, वही, वही तो वह कह रहे हैं, वही वह कह रहे हैं, सवाल फर्क नहीं हुआ। वही... जी कह रहे हैं, वह यह कह रहे हैं कि आदमी कुछ न कुछ प्रयत्न तो करता ही रहेगा। नहीं-नहीं, हां, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि प्रयत्न छोड़ दे, अगर मैं ऐसा कहूं तो मैं तथाता की बात नहीं कर रहा हूं फिर। मैं अगर ऐसा कहूं कि आदमी प्रयत्न छोड़ दे, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं। क्योंकि प्रयत्न और अप्रयत्न फिर उसी बड़े डवेलिज्म के दो हिस्से हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि प्रयत्न छोड़ दें। मैं यह कह रहा हूं कि उसे यह समझ में अगर आ जाए कि प्रयत्न कुछ भी नहीं लाता है, तो वह अगर प्रयत्न भी करेगा तो भी फिर लाने की आकांक्षा में नहीं करेगा। और अगर नहीं आएगा तो दुख नहीं भोगेगा क्योंकि वह जानेगा कि प्रयत्न नहीं लाता है। मैं यह कह रहा हूं कि प्रयत्न वह छोड़ दे, प्रयत्न जारी रहेगा। वह भी जीवन का हिस्सा है, वह भी जीवन का हिस्सा है। लेकिन तब प्रयत्न की असफलता

भी स्वीकृत है, वह भी स्वीकृत है, वह भी स्वीकृत है। और उन चीजों पर प्रयत्न की असफलता पूरी तरह स्वीकृत है जो जीवंत है। जैसे यह तो हो सकता है कि प्रयत्न से मैं धन कमा लाऊं, यह हो सकता है। क्योंकि धन बिल्कुल मरी हुई चीज है। और इसलिए प्रयत्न करने वाले लोग अक्सर धन की दिशा में चले जाते हैं। क्योंकि... हां, वे, मैं जो यह कह रहा हूं कि प्रयत्न की दिशा में जाने वाला चित्त अक्सर धन की दिशा में चला जाता है, क्योंकि धन प्रयत्न से आ सकता है। एकदम मरी हुई चीज है। लेकिन प्रयत्न अगर प्रेम की दिशा में चला जाए, तो मुश्किल में पड़ जाता है, क्योंकि बहुत जीवंत चीज है।
अगर मैं प्रेम की खोज में निकल पडूं कि मैं प्रेम पाकर रहूंगा, तो मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा। अगर मैं धन की खोज में निकलूं, तो सफल हो भी सकता हूं। सफल हो भी सकता हूं क्योंकि धन मरी से मरी चीज है।

आप क्यों ऐसा कहते हैं--धन मरी हुई चीज है?

मेरा मतलब, मेरा मतलब यह है कि धन मरी चीज का मतलब यह है कि तिजोरी में बंद की जा सकती है, मुट्ठी में बंद की जा सकती है, जमीन में गड़ाई जा सकती है, मरती नहीं।... जिंदा चीज को तिजोरी में बंद करो, मुट्ठी में बंद करो, जमीन में गड़ाओ तो मर जाएगी। यानी मेरा मतलब यह है कि धन जो है, धन जो है, वह दी गई वैल्यू है। रुपये को आप मार नहीं सकते। मरना बहुत मुश्किल है रुपये को, क्योंकि रुपये में वस्तुतः कोई जीवंत वैल्यू नहीं है, हमने मिल कर वैल्यू दे दी है, दी गई वैल्यू है। प्रेम में एक जीवंत वैल्यू है, हमारी दी गई वैल्यू नहीं है। यानी प्रेम का कोई हमने सिक्का पैदा नहीं कर लिया है, प्रेम जीवन से ही आ रहा है। प्रेम क्योंकि जीवन से ही आ रहा है, वह जीवन की जड़ों से ही आता है, वह कभी खिलता है, फैलता है और इसलिए हवा के तूफान उसको डराते भी हैं। सूरज की गर्मी से वह भयभीत भी हो जाता है। कोई उसे तोड़ भी लेना चाहता है। अब वह सब भय वहां खड़े होते हैं। तो आदमी ने जीवन की चीजों में जब पाया कि प्रयत्न से बहुत मुश्किल है उनको पाना, तो उसने ऐसी चीजें ईजाद कर ली हैं जो प्रयत्न से पाई जा सकती हैं। लेकिन उनसे तृप्ति नहीं होती। क्योंकि वह धन इक्ट्ठा करके फिर धन से भी प्रेम ही खरीदने जाता है। उनसे तृप्ति नहीं होती, क्योंकि मुर्दा चीज तृप्ति नहीं नहीं दे सकती।

धन की जो वैल्यू है वह एक सिंबालिक वैल्यू है?

सिंबालिक का मतलब ही यह होता है, सिंबालिक का मतलब ही यह होता है कि डाली गई है। प्रेम की कोई सिंबालिक वैल्यू नहीं है। न, सिंबालिक वैल्यू नहीं है, आपने डाली हुई है।

प्रेम का भी कोई मीनिंग है तुम्हारा?

न, न, मीनिंग बहुत अलग बात है। मीनिंग बहुत अलग बात है। रुपये में मीनिंग बिल्कुल नहीं है सिर्फ सिंबालिक वैल्यू है। सिंबालिक वैल्यू है। यानी हम कहते हैं कि यह एक रुपये का नोट है और हम पचास आदमी कहें कि एक रुपये का नोट है, कल हम... इंकार करे दें, तो यह एक रुपये का नोट नहीं रह जाएगा। लेकिन प्रेम को आप कल इंकार नहीं कर सकते हैं। आपके बस की बात नहीं है इंकार करना और थोपना। यानी मैं यह कह रहा हूं कि एक रुपये का नोट है यह हमारी स्वीकृति है, तो हम इसको एक रुपये का नोट कहते हैं लेकिन प्रेम आपकी स्वीकृति पर निर्भर नहीं है। क्या आप इसको प्रेम कहते हैं इसलिए प्रेम है? यह प्रेम है इसलिए आपको प्रेम कहना पड़ता है, यह रुपया नहीं है।... आप सोचा करें।

हम सबसे प्रेम करें, वे हमसे प्रेम करें, या न करें, वह प्रेम कैसे मुरझा जाएगा?

आप जब भी कहें कि हम करें, तो आप अभिनय ही कर सकते हैं। आप अभिनय ही कर सकते हैं। प्रेम का अभिनय कभी नहीं मुरझाएगा, क्योंकि वह सिंबालिक वैल्यू है। जो मैं कह रहा हूं वह रुपये की तरह है। अगर प्रेम का अभिनय करते हो, वह कभी नहीं मुरझाएगा। मुरझाने का कोई सवाल ही नहीं है, क्योंकि वह कभी खिला ही नहीं। वह प्लास्टिक का फूल है जो हमने बनाया था, वह खिला-विला नहीं था, कभी कहीं से आया नहीं था, जोड़ा गया था। कंस्ट्रक्टिड है, क्रिएटिड नहीं है, तो वह नहीं मुरझाएगा। आप जिंदगी भर कर सकते हैं। इसलिए मनुष्यता को प्रेम करना बहुत आसान है, एक मनुष्य को प्रेम करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि मनुष्यता कहीं भी नहीं है। इसलिए मजे से आप अभिनय कर सकते हैं कि मैं मनुष्यता को प्रेम करता हूं, मैं सारे जगत को प्रेम करता हूं, वसुधेवकुटुम्भकम, सारी वसुधा मेरी कुटुम्भ है। और एक पड़ोसी को कुटुंभ में बनाना बहुत मुश्किल मामला है, क्योंकि जिंदा आदमी है। वसुधा तो कहीं है नहीं, उसका आप अभिनय कर सकते हैं।
तो हमने अभिनय के वैल्यूज पैदा किए हैं और वह बचाव है जिंदगी के। प्रेम तो करना पड़ेगा एक जीवंत आदमी को। और जीवंत आदमी को प्रेम करना बहुत कठिन है, क्योंकि वह हजार बाधाएं भी खड़ी करता है। प्रेम लेने में भी बाधा है, देना तो मामला दूसरा है। अगर मैं आपके द्वार पर प्रेम देने आऊं, तो भी आप स्वीकार करेंगे, यह भी कहां पक्का है। वही फिर आप मेरा स्वीकार ही कर लें यह थोड़े ही है कि आपसे मैं कहूं कि देने की फिकर मत करिए, सिर्फ मेरा प्रेम ले लीजिए। यह जरूरी नहीं है कि आप लेंगे। आप कह सकते हैं, जाइए, मुझे नहीं चाहिए। कैसे चले आए हो बिना पूछे प्रेम देने! लेकिन मनुष्यता को दिया जा सकता है, क्योंकि मनुष्यता कहीं भी नहीं है। और मनुष्यता के प्रेम का अभिनय किया जा सकता है। इसीलिए जो एक-एक आदमी के प्रेम से भाग गए, वे सारे जगत के प्रेम की बातें करते रहे हैं। संन्यासी हो, भाग गया। एक आदमी को प्रेम करने से डर गया है, क्योंकि प्रेम बड़ी जोखिम है और प्रेम बड़ा उपद्रव है, और प्रेम बड़ा संकट है। सभी जिंदगी की चीजों में वह बात छिपी है। वह एक से तो भाग गया है प्रेम करके लेकिन वह सबसे प्रेम कर रहा है। सबके साथ प्रेम में कोई जोखिम नहीं है क्योंकि सबके साथ... न टूटने का डर है, वह जो आप कहते हैं ठीक कहते हैं। न टूटने का डर है, न कुम्हलाने का डर है। लेकिन ध्यान रखना यह है कि वह कुम्हलाने का डर इसीलिए नहीं है कि फूल खिला ही नहीं है, नहीं तो और कोई उपाय नहीं है। अगर कुम्हलाने से बचना है तो खिलने से बचना पड़ेगा और बीच में दोनों के जो है वह सिंबालिक वैल्यू है, वह डाली गई वैल्यू है। वह हमारी अपनी डाली हुई है, वह अभिनय का हिस्सा है। और बहुत सुखद है प्रेम का अभिनय करना। प्रेम करना तो दुखद भी हो सकता है। प्रेम में दुख आएगा ही। प्रेम की अपनी सफरिंग होगी। और शायद इतनी सफरिंग किसी और चीज की नहीं होती। प्रेम का आनंद चूंकि गहरा है इसलिए पीड़ा भी गहरी होगी। वह हमेशा अनुपात में होती है।

यह अगर एक्सेप्ट कर लें, जब हंसी का वक्त आएगा जी भर कर हंस लें और होने का वक्त तो मन भर कर रो लें।

नहीं मैं कहां कह रहा हूं। मैं यही कह रहा हूं, मैं यही कह रहा हूं कि
जो आए उसको पूरी तरह जी लें। न जीने की... लेकिन अगर यह भी आपका कंसेप्ट है। न, उतना ही सब कर लेने की जरूरत है। यह भी मेरी धारणा और फिलासफी है कि जब रोने का वक्त आएगा तब मैं पूरा रो लूंगा और जब हंसने का वक्त आएगा तब मैं पूरा हंस लूंगा। अगर यह मेरी फिलासफी है तो मैं न पूरा रो पाऊंगा और न पूरा हंस पाऊंगा। यह मेरी जिंदगी होना चाहिए। जिंदगी का मतलब यह है कि तीसरा कोई उपाय ही नहीं है, जब रोने का वक्त आएगा तो रोऊंगा, इसमें रोने का सवाल क्या है।
मैं पीछे कह रहा था, एक झेन फकीर मरा, उसका शिष्य जो बहुत प्रसिद्ध था, गुरु से भी ज्यादा प्रसिद्ध, वह दरवाजे पर बैठ कर रो रहा है मंदिर के। और लाखों लोग आए हैं, तो वे बहुत बेचैनी में पड़ गए हैं, क्योंकि उसको वे समझते थे कि यह ज्ञान को उपलब्ध हो गया। और यह रो रहा है! तो जो निकटतम थे

उन्होंने आकर कहा कि आप ऐसा मत करिए, इसका बड़ा बुरा असर पड़ेगा। हम लोग तो यही सोचते थे कि आप तो ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं और आप रो रहे हैं? तो उसने कहाः ज्ञान ने कब कहा कि रोओ मत। मुझे पता नहीं ऐसे ज्ञान का। तो उन्होंने कहा कि लेकिन आप तो कहते थे कि आत्मा अमर है, फिर अब रोना क्या? उसने कहाः मैं अब कब कह रहा हूं कि रोकर कि आत्मा मर गई है। लेकिन क्या मुझे रोने का भी हक नहीं? तो फिर किसलिए रो रहे हो?
उसने कहा कि मुझे रोना आ रहा है इसलिए रो रहा हूं। क्या रोने के लिए भी कारण चाहिए? कि मुझे पक्का कारण मिल जाए तब मैं रोऊं? न, मुझे रोना आ रहा है तो मैं रो रहा हूं। और मुझे पीड़ा हो रही है तो मैं पीड़ा झेल रहा हूं। और फिर जिसको प्रेम किया था, उसकी विदा में मैं नहीं रोऊंगा तो कौन रोएगा? और मैं उसकी आत्मा के लिए नहीं रो रहा--आत्मा की आत्मा जाने। वह शरीर भी बहुत प्यारा था और वैसा शरीर अब दुबारा नहीं होगा। और अभी थोड़ी देर में हम इसे जला आएंगे। लेकिन मैंने उनसे प्रेम का आनंद लिया था, अब प्रेम विदा हो गया है, तो अब उसकी काली छाया कौन भोगेगा? तुम? मुझे भोगनी पड़ेगी। लेकिन तुम यह मत सोचना कि मैं दुखी हूं। असल में अगर हम बहुत ख्याल से देखें तो खुद दुख में दुख नहीं है। दुख के अस्वीकार में ही दुख है। स्वयं दुख में क्या दुख हो सकता है। मैं रो रहा हूं, यह उतना ही रिलैक्सिंग हो सकता है जितना हंसना भी न हुआ हो। स्वयं दुख में कोई दुख नहीं है। और दुख का अपना सुख है, सुख का अपना दुख है। लेकिन हम स्वीकार नहीं करते। सुख को हम स्वीकार कर लेते हैं इसलिए दुख नहीं मालूम पड़ता। और दुख को हम अस्वीकार करते हैं इसलिए दुख मालूम पड़ रहा है। वह जो अस्वीकृति है, वह दंश ले आती है। लेकिन अगर जीवन स्वीकृत है...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

स्वीकार करे लें तो सुख मिल सकता है। लेकिन जब तक हम चुनाव कर रहे हैं;
हम कहते हैं, यह हां और यह नहीं, तब तक हम पूरी जिंदगी को जीने के लिए राजी नहीं है। हम कहते हैं, हम जिंदगी में चुनाव करेंगे। इतनी जिंदगी को जीएंगे, इतनी जिंदगी को इंकार करेंगे। इसलिए मेरा कहना है कि टोटल की स्वीकृति नहीं है। और जहां समग्र की स्वीकृति नहीं है, वहां हम कभी समग्र को उपलब्ध भी नहीं हो सकते, और समग्र के साथ भी पूरे नहीं हो सकते। वहां हम खंड-खंड... और जब समग्र की स्वीकृति बाहर न होगी तो हमारे भीतर भी खंड हो जाएंगे। इसको ध्यान में रखना जरूरी है। अगर मैंने कहा कि मुझे प्रकाश स्वीकार है अंधेरा स्वीकार नहीं है, तो ऐसा नहीं है कि बाहर की पृथ्वी पर जहां प्रकाश होगा वह मुझे स्वीकृत होगी और अंधकार होगा उस... । मेरे घर में भी दो हिस्से हो जाएंगे, तो मेरे घर में भी जो हिस्सा अंधेरे में पड़ जाता होगा वह अस्वीकार हो जाएगा और जो प्रकाश में पड़ता होगा वह स्वीकृत हो जाएगा। मेरे शरीर में भी दो हिस्से हो जाएंगे, जहां अंधकार पड़ता होगा अस्वीकार हो जाएगा। मेरी आत्मा में भी दो हिस्से हो जाएंगे, जहां अंधकार पड़ता होगा अस्वीकृत हो जाएगा जहां प्रकाश पड़ता होगा... तो मैं सारे जगत को आरी से लेकर दो में काट दूंगा। उसमें मैं भी कटूंगा, उसमें मैं नहीं बच सकता। क्योंकि सारे जगत का बहुत छोटा सा रूप मैं भी हूं। उसमें मैं भी दो हिस्सों में कट जाऊंगा। वह जो मेरा कटा हुआ हिस्सा है वह तड़फेगा, वह चिल्लाएगा, उसे दबा कर रखना पड़ेगा, उसे मिटा कर रखना पड़े, मिट सकता नहीं, क्योंकि वह मैं ही हूं। उसकी छाती पर बैठे रहना पड़ेगा कि कहीं वह निकल कर बाहर न आ जाए तो मैं एक उपद्रव में पड़ जाऊंगा। जीवन एक उपद्रव बन जाएगा। बन गया है क्योंकि हम उसे पूरा स्वीकार करने को राजी नहीं हैं।

हम स्वीकार हमेशा करते हैं। हम झूठ बोलते हैं जब हम कहते हैं कि हम स्वीकार नहीं कर रहे, मतलब...

नहीं, नहीं, एक्सेप्ट करना पड़ता है। इसमें ही फर्क हम... हमारे शब्दों में सारी कठिनाई जो है वह यह है, आप जो कहते हैं कि सी ड.ज एक्सेप्ट, तो

एक्सेप्टेंस नहीं है। हमें स्वीकार करना पड़ता है। क्योंकि जो है वह है हमारे अस्वीकार से वह मिटता नहीं। लेकिन हमें स्वीकार करना पड़ता है, जब करना पड़ता है तो दंश आ जाता है, तो पीड़ा आ जाती है। पीड़ा जो है वह हमारे स्वीकार करने की चेष्टा में है। जैसे कि आज मां मर गई है, तो कोई कह रहा है कि शरीर कितने वक्त निकलेगा? मां शरीर थी, इसे हमने जिंदगी भर स्वीकार न किया। मां को तो हम बिल्कुल आत्मा ही मान कर चल रहे हैं। उसे शरीर मान कर चलना तो बहुत मुश्किल है।
तो जिंदगी भर अस्वीकार किया कि मां शरीर थी। पत्नी शरीर हो सकती है, मां तो शरीर होती नहीं। लेकिन मां शरीर है, मां भी शरीर है। और भी कुछ होगी, शरीर भी है ही। पर उसका शरीर होना हमने कभी स्वीकार नहीं किया था, वह मरने पर ही इन्हें प्रकट होगा। क्योंकि तब कुछ उपाय न रह जाएगा और। हम स्वीकार करते हैं, करना पड़ता है, लेकिन यह मैं नहीं कह रहा हूं कि करना पड़े। मैं यह कह रहा हूं कि ऐसा करना पड़े, मैं यह कह रहा हूं कि मौका ही क्यों आए कि करना पड़े, हम सदा स्वीकार में ही जीएं तो करना पड़ने का कोई सवाल ही नहीं आता, तब ऐसा न होगा कि मां आज मर गई है। न, तब मुझे बहुत दिन पहले से लगना शुरू होता है कि मां मर रही है। और तब मां मर रही है ऐसा मैंने बहुत दिनों से जाना होता और तब मैं इस ढंग से जीया होता कि मां मर रही है लेकिन मैं बिल्कुल नहीं जीया। अभी एक घंटे पहले तक मां नहीं मरी थी, तक तक मैं मान कर चल रहा था कि मां जिंदा है। और जो जिंदा के साथ व्यवहार करना चाहिए, वह कर रहा था। अब मां मर गई है, तो वह सब व्यवहार मैंने बदल दिया है। हो सकता है घंटे भर पहले धन के लिए उससे लड़ रहा था और घंटे भर पहले पत्नी के लिए उससे लड़ रहा था और घंटे भर पहले उसको घर से निकाल देने के लिए तैयार था, और घंटे भर बाद छाती पीट कर रो रहा हूं। नहीं, लेकिन अगर स्वीकृति पूरी होती तो मैं रोज ही जानता कि मां मर रही है।
मैंने, ये, ये दो हिस्से न होते, तब ऐसे कि एक दिन मां जिंदा थी और एक दिन मर गई, ऐसा हिस्सा करना मुश्किल है। ऐसा मैं रोज जानता। और जब मां रोज मर रही हो, तब शायद मां से लड़ना बहुत मुश्किल हो जाए। लड़ने की सुविधा बन गई, क्योंकि मैंने मां कभी मरेगी, अभी जिंदा है।
अभी एक मेरे परिचित थे एक मित्र। उनकी कोई पांच-छह साल पहले शादी हुई। प्रोफेसर थे यूनिवर्सिटी में। और लड़की भी प्रोफेसर थी। कोई चार-पांच साल ही साथ थे। तो शादी जब हुई तब भी वे मेरे पास आए थे कि मैं परेशानी में पड़ गया हूं, क्योंकि वे हिंदू और ब्राह्मण और वह पारसी थी लड़की। तो पिता राजी नहीं थे। बहुत पुराना ऑर्थाडाक्स परिवार था। तो मैंने उनसे यह कहा कि तुम यह ठीक से समझ लेना कि तुम लड़की से शादी कर रहे हो, कहीं पिता के विरोध से तो शादी नहीं कर रहो हो, इतना भर सोच लेना। नहीं तो तुम पीछे बहुत मुश्किल में पड़ जाओगे। नहीं, उन्होंने कहा, आप क्या बात करते हैं। पिता के विरोध से क्या लेना-देना है? मुझे तो, उस लड़की के बिना मैं जी नहीं सकता। लड़की के मां-बाप का भी विरोध था। मैंने उस लड़की को भी कहा, वे दोनों ही मुझसे परिचित हैं, उससे भी मैंने कहा कि तू लड़के से शादी कर रही है न, अपने मां- बाप के विरोध से तो नहीं? उसने कहाः आप कैसी बात करते हैं, मां-बाप से विरोध का इससे क्या लेना-देना?
और शादी के दो महीने बाद ही बात साफ हो गई। क्योंकि वह शादी के बाद तो विरोध खतम हो गया, कोई मतलब न रहा विरोध का। जैसे ही विरोध समाप्त हुआ वैसे ही उन दोनों को पता चला कि वे तो बहुत दूर हैं, कहीं पास नहीं हैं। वे तो उन दोनों के खिंचाव में, धक्के में, रेस्सिटेंस में, रिबेलियन में वे पास थे। वह सब खतम हो गया, तो वे दूर होने शुरू हो गए। और एक साल भर बाद एकदम फासले पर हो गए। और वह इतना कठिन हो गया जीना कि उस लड़के ने शराब पीना शुरू कर दिया और कुछ भी करना शुरू कर किया, और पांच साल बाद मर ही गया, हार्ट अटेक से मरा, पूरा स्वस्थ आदमी था। जब वह मरा उसके पहले उसकी पत्नी ने उसने मुझसे न मालूम कितनी दफा कहा कि हम तलाक करें कि क्या करें कि क्या न करें? उसकी पत्नी एकदफा मुझसे कह गई कि हम दो में से कोई एक मर जाए तो अच्छा है। फिर वह मर गया। जब वह मर गया तो वह पत्नी इतनी आई रोई, इतना शोरगुल मचाया।

मैंने कहाः तू किसलिए रोती है? तू जो चाहती थी वह हो गया। तू रोती किसलिए है, तूझे खुश होना चाहिए। तो एकदम चौंकी... आप क्या कहते हैं? मैंने कहा कि मैं वही कहता हूं कि तूने मुझसे खुद कहा था कि ये मर जाए तो अच्छा है। उसने कहाः वह मैंने क्रोध में कह दिया होगा। मैंने कहाः अभी तू जो रही है, यह दुख में रो रही होगी, कल यह दुख चला जाएगा, फिर?
वह क्रोध में था, वह क्रोध में चला गया। यह कल दुख में चला जाएगा। उसने कहाः यह कभी नहीं जा सकता दुख मेरा। कि हम सदा ही ऐसा सोचते हैं, हम सोचते हैं, प्रेम कभी नहीं जा सकता, वह भी चला जाता है। हम सोचते हैं, दुख नहीं जा सकता, वह भी चला जाता है। हम सोचते हैं, सुख नहीं जा सकता, वह भी चला जाता है। उसने कहाः कभी नहीं जा सकता, अब जिंदगी भर इस दुख में दुखी रहूंगा। तो ठीक है, लेकिन कभी याद रखना इस बात को।
यदि तू कह ले, कहने लगे कि वह मैंने दुख में कह दिया, तब फिर बड़ा मुश्किल है कि तू कभी बोली है कि नहीं, कभी तू क्रोध में बोलती है, कभी तू प्रेम में बोलती है। जब प्रेम में हम बोलते हैं, तो हम कहते हैं, हम जिंदगी भर साथ रहेंगे, सच में हम प्रेम में बोल रहे हैं? दो दिन बाद जब प्रेम नहीं रहेगा, तो हम कहेंगे, वह प्रेम में बोल दिया था, उसमें कोई मतलब न रहा। और हम भी कभी बोले हैं। उसने कहा कि नहीं, यही मैं खुद बोल रही हूं। आप कैसी बातें कर रहे हैं? मेरे पति मर गए हैं और आप इस तरह की बातें कर रहे हैं, मैं इतनी दुखी हूं।

तो शाश्वत क्या होगा?

शाश्वत कुछ भी नहीं है। परिवर्तन ही शाश्वत है। शाश्वत की आकांक्षा
ही हमारा भ्रम है। पता नहीं कि छुटकारा हो। मैं कहता नहीं कि छुटकारा हो, क्योंकि यह छुटकारे की बात भी हमारे किसी दुख के क्षण में हो जाती है। जब हम आनंद के क्षण में होते हैं तब हम जोर से पकड़ लेना चाहते हैं। छुटकारा- वुटकारा बिल्कुल नहीं चाहते। विषाद के क्षण में छुटकारा बोलने लगते हैं। जब विषाद का क्षण होता है, हम कहते हैं, छुटकारा कैसे हो? असफलता का क्षण होता है, कहते हैं, छुटकारा हो कैसे हो? सफलता के क्षण में, आनंद के क्षण में हम कहते हैं, कैसे सदा बंधे रहे, छुटकारा कभी न हो। नहीं, मैं यह कह रहा हूं कि यह समझना पड़ेगा कि आपकी ये सब आवाजें सब आपकी हैं। ये सब आवाजें इकट्ठी आपकी हैं। ये छुटकारे की आवाज भी आपकी है और ये सदा बंधे रहने की आवाज भी आपकी है।... ये सब आवाजें आपकी हैं। ये जिंदा रहने की आवाज भी आपकी है और कल मरने की इच्छा भी हो सकती है, वह भी आपकी है। ये सब विरोधी सब आपकी हैं। और इसमें कोई भी एक आपकी नहीं है, ये सब आपकी हैं।
हम क्या करते हैं, जब एक आवाज होती है तब हम उसके साथ आइडेंटिफाइड करते हैं कि यह मैं हूं। जब मैं दुख में होता हूं तो मैं कहता हूं ऐसा मैं जिंदगी भर दुखी रहूंगा, अब मैं कभी सुखी नहीं हो सकता। यह दुख बोल रहा है, यह मैं नहीं बोल रहा हूं। यह मुझ पर छाया हुआ दुख का क्षण बोल रहा है। जब मैं सुख में होता हूं, तब मैं दूसरी बात बोलूंगा। प्रेम में कुछ और बोलूंगा, क्रोध में कुछ और बोलूंगा। ये सब मेरी आवाजें हैं। लेकिन इनमें से कोई आवाज मैं नहीं हूं। हमारी गलती है कि हम हरेक आवाज को जब वह हमारे ऊपर होती है हम कहते हैं मेरी आवाज। उसे हम कहते हैं, यह मेरी आत्मा है इस वक्त, मेरा सेल्फ है। इसमें कोई हमारा सेल्फ नहीं है।
जैसे नदी बह रही है, वह एक वृक्ष के नीचे से गुजरती है, तो उसकी वृक्ष
की पराछाई बनती है उसमें, नदी उस वक्त सोच सकती है कि मैं वृक्ष हूं, और वह सोच भी नहीं पाई है कि बह गई और एक चट्टान के पास से गुजर गई, और चट्टान की छाया बन रही और नदी सोचती है कि मैं चट्टान हूं, और वह सोच भी नहीं पाई कि वह बह गई, और अब वह बादलों के नीचे से गुजर रही है और बादलों की छाया बन रही है और नदी सोचती है कि मैं बादल हूं, और एक पक्षियों की कतार निकल गई उसकी छाती पर से और चमक गई और उसने सोचा कि मैं पक्षी हूं। न, इनमें से कोई भी नदी एक नहीं है।

तो नदी क्या है?

हां, नदी सारे बहाव का जो भी प्रतिफलन है, उस सबका जोड़ है। इस सबका एक अर्थ में वह उस चट्टान से भी एक है जो उसमे झलक गई है, उस वृक्ष से भी जिसने उसमें फूल गिरा दिए और पक्षियों की उस कतार से भी जो उसके ऊपर से पार हुई है। उस सूरज से भी, उस पृथ्वी से भी, उस रेत से भी, और उस आदमी से भी जो उसमें स्नान कर गया और उस बांसुरी बजाने वाले से भी जिसने गीत गाया, वह नदी उन सबसे एक है। और जिस दिन नदी समग्र की एकता को जान पाएगी, उस दिन नदी की फिर कोई आकांक्षा नहीं है कि ऐसा ही हो। क्योंकि तब वह जानती है कि ऐसा ही होने का मतलब मरना होगा। अगर वह ऐसा सोचेगी कि वृक्ष ही मैं हो जाऊं तो फिर चट्टान न हो सकेगी। और फिर पक्षियों की कतार न हो सकेगी। और फिर गिरता हुआ फूल न हो सकेगी, बांसुरी की आवाज न हो सकेगी, फिर रेत और सागर, यह सब कुछ भी न होगा, फिर बादल और सूरज यह कुछ भी न होगा, फिर वह चट्टान ही हो जाएगी, फिर वह नदी न रह जाएगी। जिस दिन नदी ऐसा समझ ले कि वह यह अनंत प्रवाह के बीच आए सभी प्रतिबिंब है वह, सभी प्रतिबिंबों से, तब बहाव सहज हो जाएगा, तब कहीं ठहरने का सवाल नहीं। इसका मतलब यह नहीं है कि तब वह झाड़ की तरफ देखेगी नहीं। न, जब गुजरती होगी तो पूरी तरह देख लेगी और बहुत प्रेम से देख लेगी, क्योंकि हो सकता है दुबारा गुजरना न हो। मतलब यह नहीं है कि वह आंख बंद कर लेगी कि अब झाड़ से क्या मतलब हमें जब हम झाड़ नहीं हैं। जब हम चट्टान नहीं हैं हमें चट्टान से क्या मतलब। वह जो मैं फर्क कर रहा हूं, वैराग्य की भाषा हमें सिखाती है कि जब तुम चट्टान से गुजर ही जाना है, तो चट्टान से क्या मतलब। मोह मत बांधो।

यह सब होने पर भी नदी भी है, वृक्ष होने पर, बादल होने पर, पक्षी होने
पर वह नदी भी है।

यह जो हम कहते हैं कि नदी भी है, इसका मतलब कुछ ऐसा हो जाता है कि अगर
इस सबको हम निकाल लें तो भी नदी होगी। नहीं, ऐसी कोई नदी नहीं होगी। हां, मैं नहीं हूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पस्ट नहीं।)

अगर हम सब निकाल लें तो कुछ भी न होगा वहां। वह सबके ही प्रवाह के जोड़ में ही घटी घटना है। वह एक संहार है जैसा बुद्ध कहते हैं कि वह एक संहार है। वह बहुत चीजों का जोड़ है। ऐसी बहुत चीजों का जो हमें पता भी न हो वे भी उसमें जुड़ी हो सकती हैं। उसमें परमात्मा और मोक्ष और निर्वाण और जो हमें पता भी न हो, उनके भी प्रतिबिंब उसमें बन रहे होंगे, वे भी जुड़े हो सकते हैं। लेकिन नदी है... सबसे अलग करके आइसोलेटिड कहीं भी नहीं है। आइसोलेशन में कोई एंटीटी नहीं है। और वह हमारा पक्का भ्रम है। वह भी हमारा शाश्वत का भ्रम है, क्योंकि हम कहते हैं चट्टान तो बीत जाएगी, रेत तो बीत जाएगी। आज तट है कल तट नहीं होगा, आज वृक्ष हैं कल वृक्ष नहीं होगा। आज एक बांसुरी बजाने वाला है, कल नहीं होगा। मुझे तो होना चाहिए, जब कुछ भी नहीं होगा तब भी मुझे तो होना चाहिए। जब बिल्कुल कुछ नहीं होगा मोक्ष होगा, तब भी मुझे तो होना चाहिए। सब शून्य होगा फिर भी मैं तो रहूंगा।
वह भी हमारी... जीवन में हम पराजित हो गए हैं शाश्वत को पाने से, तो हमने जीवन में शाश्वत की तो खोज छोड़ दी, अब अपने में ही शाश्वत को पकड़ लिया। तो मैं तो शाश्वत हूं। न होगा प्रेम शाश्वत, जाने दो; न होंगे फूल शाश्वत, जाने दो, लेकिन मैं, मैं तो शाश्वत हूं। लेकिन शाश्वत की आकांक्षा क्या? शाश्वत का प्रयोजन क्या? शाश्वत होने का मतलब क्या? असल में होना ही, होना मात्र ही परिवर्तन है। होने का अर्थ भी परिवर्तन में है। सच तो यह है कि है, इस जैसी कोई चीज नहीं है होना। होने जैसा है कुछ।
पहली दफा बर्मी भाषा में बाइबिल का अनुवाद किया, तो शब्द उनको बड़े कठिनाई के पड़ गए। गॉड इ.ज, यह कैसे अनुवाद करें। ईश्वर है, क्योंकि बुद्ध

के प्रभाव में जहां-जहां भाषाएं विकसित हुई हैं वहां... नहीं है। वहां टेबल है ऐसा कहना भी ठीक नहीं, वहां टेबल हो रही है। उस भाषा का जो रूप होगा वह ऐसा ही होगा, क्योंकि टेबल है यह भी ठीक नहीं है। बच्चू भाई हैं यह ठीक नहीं है, बच्चू भाई हो रहे हैं। नदी है बहाव, और है का मतलब है ठहराव। ये कंट्राडिक्ट्री ट्रम्स हैं। नदी है, यह शब्द उपयोग करना ही गलत है। नदी का मतलब ही है कि जो है कभी नहीं, सदा हो रही है। किसी क्षण भी जिसको हम नहीं पकड़ पाएंगे। हां, सदा प्रवाह में है, सदा होने में ही है। और है कि स्थिति में कभी भी नहीं आती। यह जो ख्याल में हमारे आ जाए, तो फिर भीतर भी शाश्वत की आकांक्षा नहीं है, बाहर भी नहीं है। तब ही हम जिसको एक्सेप्टेंस कह रहे हैं, वह फलित होगा, फिर हमें करना नहीं पड़ेगा, फिर कोई उपाय नहीं है। फिर ठीक है फिर नदी जानती है कि चट्टान झलकेगी और फिर नहीं भी झलकेगी। बांसुरी सुनाई पड़ेगी फिर नहीं भी सुनाई पड़ेगी। तट मिलेगा और छूटेगा भी। ये दोनों तो स्वीकृत हैं और यह नदी का होना ही हो गया। इसलिए अब इस होने में उसे कोई विरोध भी नहीं है। तट आता है तो प्रेम है, तट विदा हो जाता है तो दो आंसू भी गिरते होंगे और वह बह जाती होगी।
इतनी सरलता से अगर हमें सब दिखाई पड़ने लगे, तो वह जो आप पूछते हैं कि
हम कैसे जीएं, वह सवाल गलत है। कैसे जीने में सदा हम जीवन पर अपने को थोपने की आकांक्षा लिए हैं। नदी नहीं पूछती कि कैसे हम बहें? बहती है क्योंकि बहना नदी का होना है। यह नहीं पूछने का सवाल है कि हम कैसे? आदमी पूछता है कि हम कैसे जीएं? यानी वह यह कहता है कि जीवन पर्याप्त नहीं है। हमें उसे ढंग देना होगा, व्यवस्था देनी होगी, मार्ग देना होगा, लक्ष्य देना होगा, उद्देश्य देना होगा, और हम बड़े खुश होते हैं। अगर कोई आदमी हमको ऐसा मिलता है जो लक्ष्य दे सकता है, उद्देश्य दे सकता है, कह सकता है वहां पहुंचो, यह पाओ, यह करो, हम बड़े प्रसन्न होते हैं। हम कहते हैं यह आदमी है इसके पीछे चलने जैसा है। सब गुरु इसी भांति पैदा हुए। उन्होंने कहा कि ऐसे जीयो। उन्होंने बताया कि यह ढंग है जीने का। जिंदगी के ऊपर भी कुछ थोपो और ढांचा बनाओ और वह सब ढांचे हमें दुख में डाल देंगे।

इससे निष्क्रियता नहीं आ जाएगी?

हां, हमेशा हमें लगता है ऐसा, पर मेरा ख्याल यह है कि इससे सक्रियता सहज होगी सिर्फ, निष्क्रियता नहींं आ जाएगी। क्योंकि निष्क्रियता भी गलत सक्रियता का परिणाम है, रिएक्शन है।
यानी एक आदमी बहुत दौड़ा, इतना दौड़ा कि थक कर गिर पड़ा, लेकिन एक आदमी धीरे-धीरे चला, इतना चला कि कभी थका नहीं, कभी गिरा नहीं। और मेरा मानना है कि वह जो बहुत दौड़ा है पीछे पड़ जाएगा, और वह जो बहुत धीमे चला है और कभी नहीं दौड़ा और कभी सक्रिय नहीं मालूम पड़ा, बहुत सीघ्र आगे निकल जाएगा। क्योंकि कभी भी दौड़ इतनी नहीं कि निष्क्रियता में ले जाए, असल में दौड़ की अति निष्क्रियता में ले जाती है।
तो जो मैं कह रहा हूं, उससे गति धीमी होगी, निष्क्रिय नहीं। लेकिन सहज सक्रियता होगी, सहज और सरल हो जाएगी। और कोई भाग नहीं रह जाएगी। लेकिन अंततः अगर हिसाब-किताब कभी कोई करने बैठेगा, तो दौड़ने वाले पीछे पड़ जाएंगे और यह जो सहज धीरे चले थे बहुत आगे निकल जाएंगे।
मैं एक कहानी कहता रहा हूं। कोरिया में एक वृद्ध भिक्षु एक नदी पार कर रहा है एक नाव से। वह उसके साथ एक युवा भिक्षु है। और नदी के पार पहुंच कर जैसे ही नाव बांधी है मांझी ने, तो उन्होंने उस बूढ़े से पूछा है कि गांव कितना दूर है, क्योंकि हमने सुना है कि सूरज ढ़लते ही गांव का द्वार बंद हो जाएगा और सूरज ढल रहा है। कितनी दूर है? हम पहुंच पाएंगे कि नहीं? उसने नाव बांधते हुए कहा, कि धीरे गए तो पहुंच भी सकते हो।

धीरे का मतलब संतोष तो नहीं?

न, बिल्कुल नहीं। मेरा मतलब जल्दी मत निकलाना। संतोष से बिल्कुल नहीं। न, संतोष से बिल्कुल नहीं। उस बूढ़े मांझी ने कहा कि धीरे गए तो पहुंच भी जाओगे! अब ऐसे पागल की बात कौन सुने। उन्होंने सोचा कि पागल, इसकी बात में पड़े तो गए, क्योंकि जब यह कहता है धीरे गए तो पहुंच भी जाओगे! तो भागे, फिर उन्होंने उससे पूछा भी नहीं। सांझ हो रही है, सूरज ढला जा रहा है। वे तेजी से भाग रहे हैं, क्योंकि द्वार बंद हो गया तो जंगल में रह जाना पड़ेगा। पहाड़ी रास्ता है, फिर सूरज एकदम ढलने के करीब हो गया है। तब वे और तेजी से भागे। फिर वह बूढ़ा गिर गया और उसके घुटने टूट गए और लहू बह रहा है, उसकी सब किताबों के पन्ने बिखर गए हैं जो वह सिर पर लिए था।
फिर वह मांझी पीछे से गीत गाता हुआ आ रहा है, वह पास खड़े होकर खड़ा हो जाता है। और उसने कहाः मैंने कहा था, क्योंकि मेरा बहुत दिन का अनुभव है। रोज ही सांझ यहां कोई उतरता है और रोजी ही कोई मुझसे पूछता है कि कितनी दूर है, पहुंच जाएंगे न सूरज ढलते? तो मेरा निरंतर का अनुभव यह है कि जो धीरे जाते हैं वे पहुंच भी जाते हैं। रास्ता बहुत बीहड़ है, जो तेजी से जाते हैं अक्सर गिर जाते हैं। लेकिन मेरी बात उस वक्त ठीक नहीं लगती, क्योंकि उन्हें यह लगता है कि धीरे गए तो कैसे पहुंचेंगे?
क्योंकि हमारा पहुंचने का ख्याल ही तेज जाने वाले से जुड़ा हुआ है। लेकिन कुछ मुकाम ऐसे भी हैं जहां धीरे जाने से पहुंचते हैं। और कुछ मुकाम ऐसे हैं जहां जाने से कभी पहुंचते ही नहीं, जहां न जाने से ही पहुंच जाते हैं। पर उन मुकामों का हमें कोई पता नहीं। सक्रियता जो है वह आपकी चेष्ठा नहीं है, सक्रियता आपके भीतर शक्ति का सहज प्रकटन है। आपकी चेष्टा नहीं है, आप अपनी चेष्टा से सक्रिय नहीं हैं। और अगर आप बिल्कुल सहज हो जाते हैं तो आपके भीतर की जो शक्ति है वह आपको सक्रिय रखेगी। लेकिन वह सक्रिय होना उतना ही होगा जितनी शक्ति होगी, उससे ज्यादा कभी नहीं होगा। इसलिए रिएक्शन की निष्क्रियता कभी भी नहीं आएगी। इसलिए कभी थकेंगे नहीं। क्योंकि थकने के पहले शक्ति वापस लौट जाएगी। चेष्टा तो उसमें है नहीं, जितना है उतना है, उतना आप करते हैं श्रम, थक जाते हैं, विश्राम पर चले जाते हैं, फिर सुबह उठ आते हैं, फिर काम करते हैं, फिर विश्राम पर चले जाते हैं। और चूंकि कहीं पहुंचना नहीं है इसलिए जल्दी का कोई सवाल नहीं है। जहां हम हैं वहां जितनी देर रहें, फिर जितनी देर जहां होंगे वहां होंगे।
जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि जिंदगी की अपनी सक्रियता है, आपको उसे देने की जरूरत नहीं। और आदमी ने जितनी सक्रियता दी, उसमें सिर्फ बीमारी है। सिर्फ बीमारी लाई है, उससे चित्त रुग्ण हुआ है, विक्षिप्त हुआ है, परेशान हुआ है और कुछ भी नहीं हुआ।
आदमी के द्वारा लाई गई सक्रियता के दो परिणाम हैंः या तो सक्रियता इतनी बढ़ जाती है कि रुग्ण और विक्षिप्तता हो जाती है, या सक्रियता का अंतिम फल एकदम सब निष्क्रियता में परिवर्तित हो जाता है कि आदमी निढाल होकर पड़ जाता है कि अब कुछ भी नहीं करने को है, कुछ नहीं करना है। ये दो ही फल हो सकते हैं। लेकिन सहज सक्रियता बिल्कुल और बात है। उसका मतलब यह है कि जितना होता है होता है, जितना चलते हैं चलते हैं और थक जाते हैं तो विश्राम करते हैं, फिर चलते हैं फिर विश्राम करते हैं। न कहीं पहुंचने की जल्दी है, न कहीं से भागने की जल्दी है। भोगी को कहीं पहुंचने की जल्दी है, त्यागी को कहीं से भागने की जल्दी है। और इसलिए दोनों बड़ी तेजी में सक्रिय हैं।
भोगी कहता है, वहां पहुंचना है--वह बड़ा मकान बना लेना है, वह बड़ी कार ले लेनी है, वह बड़ा पद ले लेना है। और त्यागी कहता है--इस मकान से जितनी दूर भाग जाएं भाग जाएं, इस कार से जितनी दूर निकल जाएं, निकल जाना है, कहीं ऐसा न हो कि मन लोलुपता से भर जाए और गाड़ी में बैठ जाएं, तो भाग जाना है। वे दोनों भाग रहे हैं।
तो धार्मिक आदमी मैं उसको कहता हूं जो भाग ही नहीं रहा, जो चल रहा है।
चल रहा मतलब यह है कि जितना जिंदगी चला रही है चल रहा है, नहीं चला रही नहीं चलता है। विश्राम करा रही है तो विश्राम कर रहा है। अपनी तरफ से कोई सक्रियता थोपने की जरूरत नहीं है। न कोई मेथड, क्योंकि जिंदगी का क्या

मेथड हो सकता है, सिर्फ मरने के मेथड हो सकते हैं। अगर कोई आदमी पूछे कि हम मरने के लिए क्या करें, तो मेथड बताए जा सकते हैं कि पहाड़ से कूदो कि जहर खाओ कि छुरी मार लो। मरने के मेथड हो सकते हैं, जिंदा रहने का क्या मेथड हो सकता है। जिंदगी इतनी अनंत है कि मेथड हो ही नहीं सकता।
और अगर किसी ने अगर जिंदगी में मेथड का उपयोग किया, तो किसी न किसी अर्थ में मरने की तरकीब हो गई। क्योंकि बहुत सी जिंदगी छूट जाएगी। मेथड तो थोड़ा सा ही पकड़ पाता है। इसलिए मरने का मेथड हो सकता है कि छुरा मार लिया, लेकिन जीने का कैसे होगा? जीना बहुत बड़ी घटना है, उसका कोई मेथड नहीं हो सकता। अनंत रूपों में, अनंत और असीम है, और रोज नई है, प्रतिपल नई है, उसका पक्का भी नहीं है कुछ कि कल क्या होगा? सुबह क्या होगा? इसलिए जिंदगी जीयी जा सकती है, विधि नहीं पूछनी चाहिए।
और सारी विधि छोड़ देंगे तो भी जीएंगे, करेंगे क्या? भागेंगे कहां? जाएंगे कहां? अगर समझ लें सारी विधि छोड़ दूं, सारा लक्ष्य छोड़ दिया, कहीं पहुंचने का ख्याल न रखा, कुछ करने की बात न रखी, तो क्या समझते हैं मर जाएंगे? तो जीएंगे लेकिन तब जीना अत्यंत सरल और सहज हो जाएगा, तब अभी और यहीं हो जाएगा, फिर कोई उपाय नहीं रहेगा कल का और परसों का, अभी और यहीं हो जाएगा, फिर जीएंगे, फिर भी जीना होगा। लेकिन वह जीना तब फिर भीतर से होने लगेगा, जितना हो सकेगा होगा, नहीं हो सकेगा नहीं होगा। बात दौड़ न रह जाएगी एक गाय चली जा रही है रास्ते पर, यह भी एक जाना है, और एक गाय को लगाम बांध कर एक आदमी लिए जा रहा है, यह भी एक जाना है, और एक गाय को पीछे से कोई डंडे मार रहा है, यह भी एक जाना है। लेकिन जब गाय को कोई रस्सी से बांध कर लिए जा रहा है तो यह लक्ष्य से बंधा हुआ आदमी का प्रतीक है। आगे से कोई खींच रहा है, वहां पहुंचना है, दिल्ली पहुंचना है, कहीं और पहुंचना है। वह लगाम से जुती हुई गाय का प्रतीक है। अगर कोई पीछे से कोई धक्का मार रहा है कि यहां से भागना है, यहां नहीं रहना है चाहे और कहीं भी चले जाएं।
जिसको हम त्यागी कहते हैं वह पीछे है। डंडे जिसको मारे जा रहे हैं कि यहां नहीं रहना, यह पत्नी, ये बच्चे, यह घर, यह गृहस्थी, यह दुकान, यहां नहीं रहना है, और कहीं। यानी उसे कहीं जाने का उतना सवाल नहीं है जितना यहां से जाने का सवाल है, जितना छोड़ने का सवाल है। लेकिन एक गाय है जो अपनी मौज से चली जा रही है। कभी लौट भी आती है, कभी इस कोने पर चली जाती है, कभी उस कोने पर चली जाती है। कभी नहीं भी जाती है, वृक्ष के नीचे विश्राम भी करती है, कभी आंख बंद करके सो भी जाती है, न कोई खींचने वाला है, न कोई भगाने वाला है।
इसे मैं सहज जिंदगी का प्रतीक कहता हूं। और इतनी ही सहज जिंदगी हो, तो
ही हम जीवन के पूर्ण अर्थ को, पूर्ण आनंद को जिसमें दुख समाविष्ट है, जिसमें अर्थहीनता समाविष्ट है। जीवन के पूरे सत्य को जिसमें जीवन के सपने समाविष्ट हैं उपलब्ध होते हैं। खंड करके नहीं उपलब्ध होते कि सत्य को उपलब्ध हो जाते हैं और असत्य विदा हो जाता है। नहीं, ऐसा नहीं हो जाता है कि दुख विदा हो जाते हैं और सुख को उपलब्ध हो जाते हैं। नहीं, दुख और सुख दोनों एक ही चीज के पहलू हो जाते हैं। और हम दोनों में जी पाते हैं और दोनों किनारों के बीच से बह पाते हैं। उतना बहाव लक्ष्य नहीं है जिंदगी का, जिंदगी एक बहाव है, बहाव में बहुत लक्ष्य आते हैं, वह बिल्कुल दूसरी बात है, उससे कुछ बहुत पड़ाव आते हैं, वह बिल्कुल दूसरी बात है, लेकिन लक्ष्य नहीं। और इसलिए जिंदगी बहुत टेढ़ी-मेढ़ी है, जिग.जैग, सीधा सीमेंट रोड़ की तरह नहीं है। क्योंकि सीमेंट रोड़ को कहीं जाना है तो वह सीधा जाता है। तो भी जितना... उतना लंबा इसका फासला हो जाएगा तो सीमेंट रोड़ शार्टकट होता है। लेकिन नदी जिग.जैग जाती है, उसी कहीं पहुंचना नहीं है, सागर पहुंच जाती है यह बिल्कुल दूसरी बात है, बिल्कुल दूसरी बात है। उसे कहीं पहुंचना नहीं, बहने का आनंद है, वह बहती है, बहती है, और जहां रास्ता मिलता है वहीं बह जाती है। कभी इस वृक्ष के किनारे से गुजरती है, कभी वापस भी लौट आती है, कभी चक्कर भी लेती है। कोई जल्दी नहीं है कहीं पहुंच जाने की, कोई जल्दी नहीं है।

जिंदगी है तो नदी की धार की तरह जिग.जैग, और हम जो जिंदगी बना रहे हैं
वह जिंदगी एक सीमेंट रोड़ की तरह है, रेल की पटरियों की तरह है साफ-सुथरी, सीधी बिल्कुल, पटरियों से नीचे उतरना नहीं और चले जाना है तो कोई... कहीं न कहीं रेल के डिब्बे जैसे पहुंचते हैं वैसे ही पहुंचेंगे। इसलिए लक्ष्य भी नहीं, उद्देश्य भी नहीं, जीना काफी है, पर्याप्त।

डिटरमिनिज्म है कि नहीं?

असल में वह पूछना ही अर्थहीन है। अर्थहीन इसलिए है कि हमें यह नहीं दिखाई पड़ता न ख्याल में, हमें लगता है कि भाग्य डिटरमिनिज्म दि फ्रीडम की स्वतंत्रता। ये हमने दोनों तोड़े हुए हैं, और ये एक ही चीज के हिस्से हैं। अगर आदमी जिंदगी से अलग है तो ही फ्री हो सकता है, और तो ही डिटरमिंड हो सकता है। और अगर जिंदगी के साथ एक हैं तो फ्रीडम का क्या मतलब है और डिटरमिनिज्म का भी क्या मतलब है? कोई मतलब नहीं है। कि अगर मैं अलग हूं जिंदगी से, तो दोनों बातें संभव हैं--या तो मैं स्वतंत्र हूं और या मैं परतंत्र हूं। स्वतंत्रता और परतंत्रता दोनों में मेरा अलग अस्तित्व स्वीकृत है।
लेकिन मैं यह कह रहा हूं कि मेरा कोई अलग अस्तित्व कहां है, तो स्वतंत्र किससे हो जाऊं और परतंत्र किसका हो जाऊं। मेरा मतलब आप समझे न? यह मेरा हाथ मुझसे स्वतंत्र है या परतंत्र है? यह मेरा हाथ मुझसे स्वतंत्र है कि परतंत्र है? अगर मैं इसे स्वतंत्र कहूं तो यह मुझसे अलग होगा, और परतंत्र कहूं तो भी मुझसे अलग होगा, लेकिन यह हाथ मैं ही हूं। इसकी स्वतंत्रता-परतंत्रता का कोई मतलब नहीं है क्योंकि ये मुझसे अलग नहीं है कि मेरे परतंत्र हो जाए या मुझसे स्वतंत्र हो जाए। मैं इससे अलग नहीं हूं कि इससे स्वतंत्र हो जाऊं कि इससे परतंत्र हो जाऊं, ये हम एक हैं। तो मेरी दृष्टि में दोनों ही गलत हैं। वे जो फ्रीडम वाले लोग हैं, वे कहते हैं, सब स्वतंत्र हैं और जो कहते हैं कि डिटरमिनिज्म है, सब बंधा हुआ है, सब प्रारब्ध है। वे दोनों ही गलत हैं। क्योंकि दोनों ही एक ही बिंदु पर खड़े हैं कि आदमी अलग है कि आत्मा अलग है। उस पर दोनों का भाव खड़ा हुआ है। परंतु दो व्याख्याएं हैं उसकी। लेकिन मैं उस भाव को ही नहीं मानता कि आदमी अलग है।
मैं कहता हूं, सब एक है। इसलिए यहां जो सत्य है वह इंटरडिपेंड्स है। सत्य जो है न इनडिपेंड्स और न डिपेंड्स। गहरे से गहरा सत्य जो है वह है इंटरडिपेंड्स, परस्परतंत्रता। न तो स्वतंत्रता, न परतंत्रता, हो ही नहीं सकती दोनों चीजें। ये दोनों चीजें परस्परतंत्रता को दो हिस्से में तोड़ना जैसे जन्म-मृत्यु को तोड़ना है दो हिस्सों में।
हम सब परस्परतंत्र में, एक परस्परतंत्रता है... ऐसा कहना चाहिए। एक इंटरडिपेंड्स है सारे अस्तित्व की, जिसमें हम हैं। अब एक लहर उठी है पानी पर, कहना मुश्किल है, कि हवाओं ने लहर को उठा दिया कि चांद ने लहर को उठा दिया, कि किसी बच्चे ने किसी किनारे पर पत्थर फेंका है और लहर उठीं। इससे उलटा भी संभव है कि लहर उठी इसलिए हवा को हिल जाना था। इससे उलटा भी संभव है कि लहर ने बच्चे को पुकारा और उसे पत्थर फेंकना पड़ा। यह सब संभव है, मेरा मतलब समझे न आप। बच्चे ने पत्थर फेंका और लहर उठ गई है ऐसा नहीं है। लहर ने बच्चे को पुकारा और पत्थर फेंकना पड़ा यह भी संभव है। कई दफा लहर आपसे पत्थर फिंकवा लेती है। लहर भी, आप ही पत्थर फेंक कर लहर उठाते हैं ऐसा नहीं, बहुत बार लहर भी आपसे पत्थर फिंकवा लेती है। किनारे पर बैठे हैं और पत्थर फिंकने लगता है। कोई काम नहीं है, कोई आसार नहीं है। सारा जगत इतना अंतरनिर्भर है कि कह सकते हैं कि इस बगिया में जो फूल खिला है अगर वह आज न खिलता तो हम यहां न होते और कठिन नहीं है यह मामला। कोई कठिन इतना अंतरनिर्भर है कि बगिया में जो फूल खिला है, जिसको हमने देखा भी नहीं है, पास हम गए भी नहीं। वह अगर आज यहां न खिलता तो शायद आज हम यहां न होते। क्योंकि उस फूल के खिलने में जगत की सारी स्थितियां उतनी ही समाविष्ट हैं जितने हमारे यहां होने में। और वह जाल इतना बड़ा है अंतरनिर्भरता का जाल,

परस्परनिर्भरता का जाल इतना बड़ा है कि मस्तिष्क उसमें डांवाडोल होकर टूट जाए। इसलिए हमने सुविधापूर्ण व्यवस्था की है कि या डिपेंड्स या इनडिपेंड्स जो है। दो बातें ही सुविधापूर्ण हैं कि आदमी स्वतंत्र है कि परतंत्र। यह बड़े सस्ते से मामला हल हो जाता है, लेकिन मामला हल करना नहीं है। मामला क्या है यह जानना है।
मैं हल करने को उतना उत्सुक नहीं हूं। हल करने की उत्सुकता पांच हजार वर्ष से चलती बनी आ रही है कि हमको हल कर लेना है मामले को। तो हल करने में हम सिर्फ साफ-सुथरे कंसेप्ट बनाने की फिकर में लग जाते हैं।

ंककमक तिवउ इववा. कमोपरु 3
मुझे इसकी फिकर नहीं है। अगर मामला है, तो हमें जान लेना है, और ऐसा भी मामला हो सकता है जो हल ही न होता हो। तो इसको भी जान लेना है। सब मामले हल होना चाहिए, ऐसा भी क्या है? और अंततः तो जीवन का जो पूर्ण मामला है, वह हल नहीं हो सकता; उसका कोई थियोरीटिकल साल्यूशन नहीं हो सकता। तब एक ही रास्ता हो सकता है कि हम उस पूरे मसले को जान लें, कि ऐसा है। और उस ऐसा है को जान लेने में एक हल उपलब्ध होगा जो जीवन का हल होगा, सिद्धांत का नहीं। अगर हम इतना ही जान लें कि हम परस्पर निर्भर हैं... । और ऐसा नहीं है कि मनुष्य मनुष्य पर निर्भर है, ऐसा भी नहीं है कि सड़क के किनारे पड़ा हुआ पत्थर आपसे किसी भी तरह संबंधित नहीं है।
संबंधित हैं हम बहुत गहरे अर्थों में, और सड़क पर पड़ा हुआ पत्थर भी आपको प्रभावित कर रहा है और जरूरी नहीं है कि आप ही पत्थर को चोट मारते हों, पत्थर भी आपको चोट मारता है। तो इतना जाल घबड़ानेवाला हो जाता है, इसलिए हम सुविधापूर्ण सिद्धांत तैयार करते हैं। सुविधापूर्ण सिद्धांत दिक्कत डाल देते हैं, कठिनाई डाल देते हैं। हमने सब तरफ ऐसा ही कर लिया है कि यह आत्मा रही, यह शरीर रहा, इससे सिद्धांत बना लिया, इससे सुविधा है। और सचाई बहुत उलटी है। सचाई यह है कि तय करना मुश्किल है कि कहां शरीर खत्म होता है और कहां आत्मा शुरू होती है! शरीर को गड़ा हुआ कांटा आत्मा को नहीं गड़ता है, ऐसा कहना कठिन है। और आत्मा पर लगी चोट शरीर पर नहीं सही जाती, कहना कठिन है। सच बात तो यह है, वे हमारे सब हिसाब हैं, जो हमने तोड़ लिये हैं। तो मैं तो ऐसा देखता हूंः कि आत्मा का जो हिस्सा दिखायी पड़ता है, वह शरीर है, और शरीर का जो हिस्सा दिखायी नहीं पड़ता, वह आत्मा है। उससे ज्यादा और कोई मतलब नहीं है।

प्रश्नः आपकी आत्मा की क्या कल्पना है?
कल्पना करता ही नहीं! कल्पना नहीं करता हूं। समष्टि है, टोटैलिटी है-- आत्मा नहीं है।

प्रश्नः अपना प्रेक्षक भाव है?

प्रेक्षक भाव कैसे जोड़ेंगे आप? आप हैं कहां? आप प्रेक्षक हैं, ऐसे हैं कहां आप? अपने को तोड़ेंगे अलग, तभी प्रेक्षक हो सकते हैं। नहीं, आप हैं कहां अलग? समझ लें, ऐसा नहीं समझ लेंगे तब तक तो आप कर रहे हैं कुछ। ऐसा है-- यह समझना पड़ेगा। अपने को हम किसी न किसी तरह कर्ता-भाव से मुक्त नहीं कर पाते। यानी हमें ऐसा लगता है, कुछ तो हमें करने दो। इतना ही करने दो कि हमने समझ लिया कि ऐसा है, लेकिन हम मौजूद हों और समझानेवाले मौजूद हों। कम से कम इतना तो करने दो कि हम प्रेक्षक बने देख रहे हैं! हम अलग खड़े हैं।
यह सब है, लेकिन हम इसके साथ इकट्ठे हैं। तो हम अपने को खोना नहीं चाहते। बुद्ध ने एक बहुत अदभुत बात कही है। बुद्ध ने कहा है कि स्वयं के होने का मोह, स्वयं को बनाये रखने की तृष्णा गहरी से गहरी तृष्णाएं हैं। बाकी सब तृष्णाएं छूट जाती हैं अगर किसी की, तो भी वह तृष्णा नहीं छूटती कि मैं हूं। और मजा यह है कि मैं हूं तो फिर उससे सारी तृष्णाएं पैदा होने ही वाली हैं। क्योंकि अगर मैं हूं तो मेरा मकान क्यों नहीं है! और अगर मैं हूं, तो मेरी पत्नी क्यों नहीं है! और अगर मैं हूं तो मेरा बेटा क्यों नहीं

है! और अगर मैं हूं, तो मेरी पत्नी क्यों नहीं है! क्योंकि जब "मैं" हूं, तब फिर "मेरा" भी निकलेगा। वह "मैं" के बीच से "मेरा" फैलेगा और "मेरे" का फैलाव होगा तो "तेरे" का फैलाव होगा और फिर मेरे और तेरे का संघर्ष होगा और फिर मैं और तू का संघर्ष होगा। तब जाल फैल जायेगा पूरा का पूरा।
अगर जाल को समझ लेना है और मुक्त हो जाना है जाल के उपद्र्रव से, तो वह
जो मैं की इकाई है, उसको तोड़ देने की जरूरत है गहरे में। वह वहां से सेल्फ टूट जाना चाहिए। वह वहां होना ही नहीं चाहिए। है ही नहीं वहां। अगर हम झांककर देख पायें, तो हमें सेल्फ जैसी चीज कहीं भी दिखायी नहीं पड़ेगी। चीजें हैं अपनी समग्रता में और सब जुड़ी हैं। फिर प्रेक्षक कैसे रहेंगे जब निरोध से भय रहेगा! आप हैं कौन जो रोकेंगे? हवाएं आती हैं पूरब से, तो पूरब से आती हैं। पश्चिम से आती हैं, तो पश्चिम से आती हैं। सूरज निकलता है। लेकिन "ऐसा होना चाहिए" जब तक हमारा ख्याल है, तब तक संघर्ष जारी रहता है। जैसा है--है।
लाओत्सु एक जंगल से गुजर रहा है। दस-पंद्र्रह उसके शिष्य उसके साथ हैं। पूरा जंगल कट रहा है। कोई राजधानी बन रही है नयी, तो सारे जंगल के सैकड़ों वृक्षों पर कारीगर लगे हैं और लकड़ियां काट रहे हैं। लेकिन एक वृक्ष अछूता है और इतना बड़ा है कि उसके नीचे हजार बैलगाड़ी ठहर जाती हैं। तो लाओत्से ने कहा, "उस वृक्ष से जरा पूछकर आओ", अपने शिष्यों से कहा, कि "राज क्या है? जब सारा जंगल कटा जा रहा है, तो यह बच कैसे गया?" तो शिष्य थोड़ी मुश्किल में पड़े कि वृक्ष से क्या पूछें! लेकिन लाओत्से ने कहा, तो जाना पड़ा। गये। वृक्ष के चारों तरफ घूमे, लेकिन वृक्ष क्यों कहता! तो उन्होंने सोचा कि क्या किया जाये? तो आसपास वृक्षों को काटते कारीगरों से पूछ लें कि इसको क्यों छोड़ दिया है। उन कारीगरों से पूछा कि "इस वृक्ष को क्यों नहीं काटते हो?" तो उन्होंने कहा, "वह वृक्ष बिल्कुल बेकार है-- टोटली यूजलेस।" "क्या मतलब बेकार का?" कहा कि "इसकी सब लकड़ियां ऐढ़ी-टेढ़ी हैं। ये किसी काम में आ नहीं सकतीं। ईंधन भी नहीं बनता इसका, क्योंकि इतना धुआं फेंकता है कि कोई घर में ईंधन नहीं जलाता। पत्ते उसके ऐसे हैं कि कोई जानवर भी उसको खाने को राजी नहीं है! तो वह वृक्ष बिल्कुल ही बेकार है।" वे वापस लौटे। उन्होंने लाओत्से से कहा कि "वृक्ष से तो हम नहीं पूछ पाये, लेकिन हमने पास के कारीगरों से पूछा, तो वे कहते हैं कि वृक्ष बिल्कुल बेकार है।" लाओत्सु ने कहाः "धन्य है वह वृक्ष क्योंकि उसका बेकार होना उसका बचाव हो गया।" उसने कहा कि "देखो, ध्यान रखो, कभी बहुत सीधे होने की कोशिश मत करना, क्योंकि जिंदगी तो टेढ़ी-मेढ़ी है। देखो, जो सीधे हो गये हैं, किस तरह काटे जा रहे हैं! सीधे होने की कोशिश मत करना। काम के बनने की कोशिश मत करना", लाओत्सु ने कहा, "काम के बने कि मुश्किल में पड़ जाओगे--कटोगे, बुरी तरह कटोगे। यह वृक्ष बहुत अदभुत है। इससे अपना तालमेल है। इस वृक्ष से हमारी बात मेल खाती है। यह वृक्ष बहुत अदभुत है। यह जैसा हो गया, वैसा हो गया। इसने न सीधा होने की फिक्र की, न किसी के काम के होने की फिक्र की। यह बिल्कुल बेकाम है। और देखो, एक हजार बैलगाड़ियां इसके नीचे विश्राम कर सकती हैं। यह जो बिल्कुल बेकाम है यह हजार लोगों के लिए छाया बन जाता है। और वे जो काम के हैं, वे बुरी तरह कट रहे हैं!" तो लाओत्सु ने कहाः "इस वृक्ष का ख्याल रखना। यह ताओ में जी रहा है, यह धर्म में जी रहा है। इसने कुछ कोशिश ही नहीं की। यह जैसा था टेढ़ा-मेढ़ा, वैसा रह गया। देखो, इसको कोई नहीं काट रहा है; इसको कोई काट ही नहीं सकता। इसके पास ही कोई नहीं आया होगा काटने!"
यह जो मैं कह रहा हूं, हम जैसे हैं और जीवन जैसा है, इसे अगर हम इसकी समग्रता में स्वीकार कर लें, इसको इसकी पूर्णता में जीने लगें, स्वीकार कर लें, तो ऐसा नहीं है कि आप निरोध में पड़ जाएंगे।
मजा यह है कि ऐसा होने से आप मोक्ष में प्रविष्ट हो जायेंगे। ऐसा व्यक्ति ही मुक्त हो सकता है, क्योंकि अब बंधने को ही कोई न रहा। वही मुक्ति है। क्योंकि बंधनेवाला ही न रहा।
दो चेष्टाएं चल रही हैं सारे जगत में। एक तो यह चेष्टा है कि हमारे पास बंधन न रह जाये। एक चेष्टा चलती है कि हमारे बंधन छूट जायें, लेकिन हम

रहेंगे। तो फिर बंध सकते हैं। दूसरी चेष्टा यह है कि हम हैं या नहीं, इसको जानें। अगर हम हैं ही नहीं, तो कौन बांधेगा और कैसे बांधेगा और किसको बांधेगा! तो बंधन से छूटनेवाला तो कभी भी मुक्त नहीं है। उसकी अमुक्त होने की संभावना निरंतर शेष है। वह है अभी, वह बांधा जा सकता है। लेकिन जिसके भीतर से मैं भाव विलीन हुआ, तो अब उसको कौन बांधेगा!
डायोजनीज के जीवन में एक बहुत अदभुत घटना है। डायोजनीज एक जंगल से गुजर रहा है। नंगा रहता था और बहुत स्वस्थ और सुंदर आदमी था। असल में स्वस्थ और सुंदर आदमी ही नंगे रह सकते हैं। कपड़े कुरूपता का ही आविष्कार होने चाहिये। तो वह नंगा गुजर रहा है जंगल से। तो कुछ लोगों ने उसे देखा बड़ा स्वस्थ है। और कुछ लोग जा रहे हैं एक बाजार में गुलामों को बेचने- खरीदने। तो उन्होंने सोचा, "इसको पकड़ लो न। इसको भी बेच देंगे, तो दाम बहुत अच्छे आयेंगे। इतना सुंदर, स्वस्थ गुलाम मुश्किल से बाजार में कभी आया होगा!" तो उन्होंने कहा कि "वह इतना तगड़ा है कि वह चार को समाप्त कर देगा! हम चार ही हैं।" वे चार थे, तो उन्होंने कहा कि पकड़ने की कोशिश में खतरा हो सकता है, लेकिन कोशिश कर लेनी चाहिए। अगर ज्यादा झंझट होगी तो छोड़कर भाग जायेंगे।
वे चारों गये। उन्होंने बड़े डरे हुए उस पर हमला किया। लेकिन वह जल्दी
से उनके बीच में ऐसा खड़ा हो गया! तो उन चारों ने उसे चारों तरफ से पकड़ लिया। उसने कुछ रेसिस्ट ही नहीं किया। फिर उसने कहाः "कहो, क्या इरादे हैं?" वे बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा कि "हम तो सोचते थे कि हमारा कचूमर निकाल दोगे। तुम तो एकदम तैयार हो गये हो! हम तुम्हें गुलाम बना कर बेचना चाहते हैं।" तो उसने कहा, "ये रहे हाथ।" उन्होंने हथकड़ियां डालीं, तो उसने सहायता की उनकी हथकड़ियां डालने में। तो वे कहने लगे, "तुम आदमी कैसे हो! हम तो सोचते थे कि तुम हमें मार डालोगे, हमने अगर पकड़ने की कोशिश की।" उसने कहा, "अगर मैं होता, तो जरूर मारता, लेकिन अब हम रहे ही न।" उन्होंने कहा, "तुम कैसे पागल आदमी हो कि अपने हाथ से हथकड़ियों में सहायता देते हो।" उसने कहा, "जब तक मैं हथकड़ियां तोडूंगा, तब तक हथकड़ियों में बंधने की संभावना है। अब मैं खुद ही बांध देता हूं, तुम इसको हथकड़ी कहोगे? हथकड़ी वह है, जो दूसरा डाल दे। जिसका हम विरोध करें और इनकार करें और डाल दिया है।" उन्होंने कहाः "हम तुम्हें गुलाम बना रहे हैं।" उसने कहा, "तुम बना सकते हो। हम राजी हैं। लेकिन ध्यान रहे, जो राजी है, वह मालिक है। उसको गुलाम बनाना बहुत मुश्किल है।" तो उन्होंने कहा, "हम चलें। हमें इससे क्या मतलब? हमें तुम्हारे गहरे दर्शन से कोई मतलब नहीं। हमें तुम्हें बाजार में बेच देना है।"
वे बाजार में ले गये, तो भीड़ लग गयी उस आदमी को देखने के लिए। और जब नीलाम की तिकती पर उसको खड़ा किया गया, तो नीलाम वालों ने जोर से आवाज दी "कि एक बहुत सुंदर गुलाम बिकने आया है।" उसने कहाः "चुप नासमझ, इस तरह मत कहो। मैं आवाज खुद ही दिए देता हूं।"
तो डायोजनीज ने कहा, "एक मालिक आज बिकने आया है, जिसको खरीदना है, खरीदे।" और वह खूब खिलखिलाकर हंसा। उस बाजार में तो बड़ा शोरगुल मच गया। और लोगों ने कहा, "है तो मालिक ही जैसा आदमी!" उसने कहा, "एक मालिक बिकने आया है, किसी को खरीदना हो तो खरीदे। कोई गुलाम है, जो मालिक को खरीदने को तैयार हो?"
इसको मैं कहूंगा मुक्त। मुक्त सिर्फ इस अर्थ में कि अब इसे बांधने का कोई उपाय न रहा। क्योंकि अब यह है ही नहीं। जिस अर्थ में हम हैं, उस अर्थ में यह नहीं है। जिस अर्थ में हम हैं, उस अर्थ में हम बंध ही सकते हैं। और हम बंधेंगे ही, चाहे भोग से बंधें, चाहे त्याग से बंधें, चाहे शराब से बंधें और चाहे भजन-कीर्तन से बंधें, हम बंधेंगे ही। हम बच नहीं सकते। चाहे गुरु से बंधें, हम बंधेंगे ही। चाहे घर से, चाहे आश्रम से, हम बंधेंगे। हम जिस ढंग के हैं, उस ढंग में ही बंधने की संभावना है। तो हम इस ढंग के हो जायें कि बंधने की संभावना न रहे? तो एक ही ढंग है कि हम न हो जायें। और हम "न" कोशिश करके कैसे होंगे? अगर हम जान लें जीवन को, जैसा है, तो हम न हो

जायेंगे। वह हमारी कोशिश नहीं हो सकती। और वह हमारा न हो जाना निर्वाण है।
वह हमारा न हो जाना मुक्ति है।
अर्थहीन है यह सब, क्योंकि वे बंधन की भाषा में ही सोचे गये हैं, और कोई अर्थ नहीं है उनमें। निर्बंध है, उसका भी कहने का कोई मतलब नहीं, क्योंकि बंधने को कोई नहीं रहा, मुक्त होने को कोई नहीं रहा।
इस मुक्ति की बात को अगर ख्याल ले पायें, तो जिंदगी एक बहुत दूसरे अर्थ में होगी--अपने अर्थ में; जैसी वह है, प्रगट होती है। और अभी तक हम उसको प्रगट करवाना चाहते हैं, इस अर्थ में, उस अर्थ में! तब वह ठीक है, उसी रंग में दिखायी पड़ने लगती है। लेकिन वह हमारी जिंदगी का रंग नहीं है; वह हमारी आकांक्षा का रंग है। वह हमारा राग है।
राग का मतलब रंग होता है। अंग्रेजी में राग को कलर ही कहना पड़ेगा, अटैचमेंट नहीं। वह हमारा रंग है जो हमने आकांक्षा की है, जिंदगी वही दिखा देती है। जिंदगी बड़ी तरल है। वह कहती है, जैसा चाहो वैसा हुए बिना चले जाओ। लेकिन वह जिंदगी का रंग नहीं है। वह हमारा रंग है, जो हमने डाला है। हम कोई रंग न डालें तो जिंदगी का जैसा रंग है, वैसा प्रगट होगा।
हमारे उद्देश्य, हमारा धर्म, हमारा लक्ष्य, हमारी साधना, योग, अयास, ध्यान, समाधि सब रंग डालते हैं। हम कुछ भी न डालें, हम तो रह जायें। जैसी जिंदगी है वैसे ही रह जाएं, तो जो प्रकट होगा, वह जीवन है। और वैसे जीवन को प्रभु कहा जा सकता है।

प्रश्नः सारी जिंदगी के साथ यही होता है कि जिंदगी बह रही है, उसके साथ मेरा कोई संबंध नहीं। तो यह कैसा होता है! समझ में नहीं आता। यह नहीं कि मैं समझने को उत्सुक नहीं हूं, लेकिन फिर भी मेरे कान में, मेरी आंखों में उसकी झलक नहीं दिखायी पड़ती!

नहीं दिखायी पड़ेगी। अब तुम कहते हो कि इसलिए नहीं कि मैं उत्सुक नहीं हूं। नहीं, तुम उत्सुक हो इसलिए झलक नहीं सुनायी पड़ी। तुम्हारी उत्सुकता बाधा है। समझने की उत्सुकता, समझने में सबसे बड़ी बाधा है। समझने की उत्सुकता भी क्यों है? समझ लिया, तो समझ लिया। नहीं समझा, तो नहीं समझा। समझने की उत्सुकता भी, तुम रंग डाल रहे हो उसमें। फिर जो है उसको तुम समझने के लिए भी उत्सुक हो तो मुश्किल हो जायेगी। एक फूल खिला है, तुम समझने के लिए काहे को उत्सुक हो! समझ में आ गया, आ गया; नहीं तो अपने निकल गये रास्ते से। अब तुम फूल को भी समझने के लिए खड़े हो गये हो। मुश्किल में डाल दिया! फूल तुम्हारे समझने के लिए कभी खिला नहीं। अब तुम फूल को भी समझोगे।
तब तुमको शास्त्र लाने पड़ेंगे, जिनमें सौंदर्य की व्याख्या और व्यवस्था है। जो बताते हैं कि कितना अनुपात हो तो सुंदर होगा फूल, और कैसा रंग हो तो सुंदर होगा फूल! तब तुमको शास्त्र लाने पड़ेंगे। अब तुम शास्त्र पढ़ोगे कि फूल को समझोगे? और जब तुम सारी व्यवस्था सौंदर्य की समझकर आ जाओगे, तो तुम एकदम असमर्थ हो जाओगे फूल को समझने में। क्योंकि वह तुम्हारी सारी व्यवस्था, तुम्हारा सारा ढांचा, तुम्हारा सारा कंसेप्शन बीच में खड़ा हो जायेगा। नहीं! समझ लिया तो समझ लिया; नहीं समझा तो नहीं समझा। समझने की भी जिद्द क्या है! कम्यूनियन नहीं हो पाता क्योंकि हम समझने के लिए ब.ड़े आतुर हैं। कम्यूनियन अभी हो जाएगा, यदि हम आतुर न हों। ठीक है; सुन लिया, बहुत है; समझने की क्या जरूरत है?
महावीर ने एक बहुत अच्छा शब्द प्रयोग किया है--"श्रावक।" श्रावक का मतलब है सुनने वाला--समझने वाला नहीं। जो सुन लेता है और चला जाता है। सवाल यह है कि सुन लिया, अब इसको समझने की क्या जल्दी है। अगर सुनने से आ गया, आ गया; नहीं आया, नहीं आया। रास्ते पर चले गये। तब तुम आतुर नहीं हो। आतुर नहीं हो, तो तुम खुले हो। जब तुम आतुर हो, तो तुम क्लोज्ड हो। जब कोई आतुर है, तो उसकी एक दिशा है। जब वह आतुर नहीं है, तो उसकी कोई दिशा नहीं है, वह डाइमेन्शनलेस है। और कम्यूनियन डाइमेन्शन में कभी नहीं होता। कम्यूनियन होता है डाइमेन्शनलेस में। तुम्हारा कोई डाइमेन्शन ही नहीं है।

जब तुम मुझे भी सुन रहे हो और एक पक्षी चिल्लाये, तो उसे भी सुन रहे हो। अगर तुम सुनने के लिए नहीं, समझने के लिए आतुर हो, तब तो कहोगे कि पक्षी बंद रहो अभी। अभी मुझे सुन रहे हो, तो कहोगे कि अभी बच्चा रोये न, अभी मुझे सुनना है। तुम सब डायमेंशन क्लोज कर रहे हो और सिर्फ एक डाइमेन्शन ओपन कर रहे हो कि मुझे सुनना है, मुझे समझना है; तुम सब तरफ से बंद कर रहे हो। लेकिन ध्यान रहे, या तो सब डायमेंशन खुले होते हैं, या सब बंद हो जाते हैं। जैसे फूल खिला है। फूल कहे कि एक पंखुड़ी खोलना है और बाकी पंखुड़ी बंद रखना है। तो हम कहेंगे, पागल हो जायेगा यह फूल। पंखुड़ियां खुलेंगी तो सब, बंद होंगी तो सब। माइंड भी ऐसा है। सारी "पंखुड़ियां" खुलती हैं, नहीं खुलतीं, तो एक नहीं खुल सकती। ऐसा उपाय नहीं है कि तुम एक खोल लो पंखुड़ी और सब कर लो बंद। इसलिए कनसनट्रेशन बाधा है, एकाग्रता बाधा है। और हम समझने के लिए कनसनट्रेशन रखते हैं कि एकाग्र करो चित्त को, यानी एक पंखुड़ी खोलो और सब बंद रखो। और कुछ सुनायी न पड़े, बस जो सुन रहे हैं, वही सुनायी पड़े। तब तुम्हें यह भी सुनायी न पड़ेगा। तुम बिल्कुल बंद हो जाओगे।
ध्यान रहे, या तो पूरे खुल सकते हो या पूरे बंद हो सकते हो। आधे खुलने, आधे बंद होने का उपाय नहीं है। तो पूरे तुम कब खुलोगे? पूरे तुम खुलोगे, जब तुम सिर्फ सुन रहे। तुमको समझना-वमझना नहीं है। कम्यूनियन की इच्छा भी बाधा है। क्यों कम्यूनियन की इच्छा है? क्या जरूरत है कि मुझे समझो! सुन लिया, इतना बहुत है। इतनी बड़ी कृपा है। चले गये। अब खुले रहे होंगे, तो समझ में आ जायेगा। बंद रहे होंगे, नहीं आयेगा। नहीं आयेगा, तो भी ठीक है। क्योंकि आने की आकांक्षा बंद करने वाली आकांक्षा है। आए ही--ऐसा क्या है! जिंदगी जितनी आ जाए उतनी बहुत है। जिसको हम सोचते हैं कि इसके कारण हमारा संवाद हो जाना चाहिए, समझ आ जाना चाहिए, वह उसकी ही वजह से नहीं हो रहा है। जिसको तुम कारण समझ रहे हो कि हम समझने को इतने तो आतुर हैं, इतने तो उत्सुक हैं, इतना सुनते हैं, इतना पढ़ते हैं, जाते हैं, यह है, वह है, सब कर रहे हैं, लेकिन समझ में नहीं आ रहा है! यह तुम कर रहे हो, इसलिए समझ में नहीं आ रहा है। इसको मत करो, तो आ जायेगा। और नहीं भी आया, तो हर्ज क्या है!
नहीं भी आया, तो हर्ज क्या है! तुम जैसे हो, काफी हो और अच्छे हो। तुम बहुत हो, लेकिन सब तरफ से हमें ईर्ष्याएं पैदा करवायी जाती हैं। तुम एक पेंटर के पास जाते हो, तो कभी ऐसा नहीं सोचते कि मैं पेंटिंग करूं, क्योंकि सबको पेंटर होने का ख्याल नहीं पकड़ा है। लेकिन तुम पेंटिंग को बड़ी सरलता से देख पाते हो। पेंटर कभी नहीं देख पाता है। पेंटिंग करने के लिए आतुर व्यक्ति भी नहीं देख पाता। तुम सहज देख पाते हो। तुम एक गीत पढ़ पाते हो, लेकिन एक कवि दूसरे कवि का गीत नहीं पढ़ पाता है। तुम कोई कवि नहीं हो, तो तुम पढ़ लेते हो। समझ लिया। नहीं समझा, नहीं समझा। कुछ खोया नहीं जा रहा है। लेकिन धर्म के संबंध में उल्टी बात हो गयी है। सबको धार्मिक होना है!
कवि सबको नहीं होना है, इसलिए कविता ज्यादा गहरे तक कम्युनिकेट करती है। और पेंटर सबको नहीं होना है, इसलिए पेंटिंग ज्यादा प्राणों तक उतरती है। धार्मिक सबको होना है इसलिए महावीर, बुद्ध या इस तरह के लोगों का संदेश कम्युनिकेट नहीं हो पाता।
तो जिंदगी है चारों तरफ, बहुत जिंदगी है। और तुम तुम्हारी तरह के हो,
वे उन तरह के हैं। क्या जरूरत है कि तुम मुझे समझो या किसी और को समझो। समझने की क्या जरूरत है? सुन लिया, यह भी काफी है। यह मुझ पर अनुग्रह है तुम्हारा, यह तुम्हारी कोई चेष्टा नहीं है। तुम नहीं सुनते, तो मैं क्या करता!

प्रश्नः विधायकता क्यों नहीं आती है?

विधायकता आनी ही क्यों?
वही तो मैं कह रहा हूं पूरे वक्त। विधायकता की जरूरत क्या है?

प्रश्नः घातकता आती है!

घातकता विधायकता का ही हिस्सा है। अगर विधायकता न आयेगी, तो घातकता
तो आ ही नहीं सकती। घातकता और विधायकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक साथ रहते हैं, अलग नहीं रहते। विधायक आदमी घातक हो सकता है। हिंसक आदमी अहिंसक हो सकता है, अहिंसक आदमी हिंसक हो सकता है। लेकिन एक ऐसा आदमी भी है, जिसको हिंसा-अहिंसा में नहीं तौला जा सकता है, और घातक-विधायकता में नहीं तौला जा सकता। जिस पर ये दोनों तराजू लागू नहीं होते, वैसे आदमी की बात करता हूं। मैं जो कह रहा हूं, वह घातकता नहीं है, वह निगेटिव नहीं है, न वह पाजिटिव है। मैं यह कह रहा हूं, दोनों के चुनाव हमें करने ही नहीं हैं। जो है, वह है। उसको निगेटिव पाजिटिव में भी तोड़ना नहीं है।
अभी कश्मीर में महेश जी से मिलना हुआ। उन्होंने एक बहुत बढ़िया बात कही--बढ़िया कि मैं हैरान हो गया। मेरी तो पाजिटिव की बात चल रही थी, तो उन्होंने कहा, फूल तो जो है वह पाजिटिव है और कांटा जो है वह निगेटिव है। तो मैं तो हैरान ही हो गया। हमको कांटा निगेटिव लग सकता है क्योंकि दुख देता है और फूल पाजिटिव लग सकता है, क्योंकि फूल सुख देता है। लेकिन हमारा सुख पाजिटिव और हमारा दुख निगेटिव है।
दुख और सुख दोनों पाजिटिव हैं, और कांटा और फूल दोनों पाजिटिव हैं। कांटे का अपना होना है, फूल का अपना होना है, और अगर हम गौर से देखें, तो कांटा ज्यादा पाजिटिव है, फूल से भी ज्यादा। क्योंकि फूल सिर्फ स्पर्श कर सकता है, कांटा प्रवेश कर सकता है। फूल क्षणभर के लिए होता है, कांटा जिंदगीभर के लिए हो सकता है। मुर्झाता भी फूल है। कांटा और फूल दोनों ही पाजिटिव हैं। हिंसा और अहिंसा दोनों पाजिटिव हैं। सिर्फ शब्द से फर्क थोड़े ही पड़ जाता है। वह एक का शीर्षासन करता हुआ रूप है। शीर्षासन कर लिया, तो उल्टा हो जाता है। हिंसक अहिंसक हो सकता है। बस उल्टा हो जायेगा। दूसरे को न मारे, अपने को मारे; अहिंसक हो गया! लेकिन मारना जारी है।
हिंसा और अहिंसा दोनों सचाइयां हैं। और दोनों को जो समग्ररूपेण स्वीकार करता है, उसके सामने एक बिल्कुल तीसरी सचाई आती है, जो पूरी सचाई है, जहां हिंसा-अहिंसा का भेद नहीं रह जाता। जो पूरी सचाई को स्वीकार करता है, वहां कांटे और फूल के भीतर जो रस बह रहा है, उसे वह दिखायी पड़ता है। कांटे में भी वही रस जा रहा है, फूल में भी वही रस जा रहा है। तब फूल और कांटे को वह दो में नहीं देखता। बाहर भीतर जो रस बह रहा है, वह उसको देखता है। वह रसधार जो कांटे को कांटा बना रही है, फूल को फूल बना रही है। और वह रसधार दोनों की एक है। उस रसधार में कांटा और फूल दोनों ही हैं, उस रसधार में कांटा और फूल एक हैं।
इसलिए मेरा मानना है कि महावीर भी समग्र जीवन को स्वीकार नहीं कर सके, क्योंकि हिंसा की अस्वीकृति है। कृष्ण ज्यादा समग्र जीवन को स्वीकार करते हैं। उन्हें हिंसा भी स्वीकार है। अगर हम बहुत गौर से देखें, तो कृष्ण की स्वीकृति बहुत टोटल है। इसलिए कृष्ण को समझना बहुत मुश्किल है और इसलिए कृष्ण की कोई भी व्याख्या हो सकती है। गांधी कृष्ण की व्याख्या ऐसी कर सकते हैं, जिससे वे अहिंसक मालूम पड़ने लगें क्योंकि कृष्ण पूरे हैं, उसमें से अहिंसा भी चुनी जा सकती है, उसमें से हिंसा भी चुनी जा सकती है।
जिंदगी पूरी है। उसमें कोई खंड ही नहीं है। इसलिए ख्याल इस मुल्क का बहुत अदभुत है। हम कृष्ण को पूर्ण अवतार कहते हैं, बाकी किसी को नहीं। इसका कुल कारण इतना है कि जिसने जीवन को उसके पूरे अर्थों में, जिसको हम अशुभ कहते हैं उसको भी, जिसको हम अंधेरा कहते हैं उसको भी, जिसको हम लंपटता कहेंगे उसको भी--यानी वह संत और लंपट एक साथ--ऐसी पूर्णता में।
तो मैं जो बात कह रहा हूं, बिल्कुल ही चुनाव की नहीं कर रहा हूं कि आप चुनाव करें। ऐसा जीवन है पूरा, उसको पूरा जीयें। और कोई उपाय नहीं है। यानी मैं ऐसा नहीं कह रहा हूं कि आप ऐसा जीने की कोशिश करें। आप ऐसा जीएंगे ही, अगर यह दिखायी पड़ जाए आपको। इसमें कोई चुनाव नहीं है। न कोई विधायक है, न कोई निगेटिव है। वे सब एक ही चीज के हिस्से और पहलू हैं। और जिस दिन एक आदमी ऐसी पूर्णता में जीए, उस दिन उसकी अहिंसा भी और है, उसकी हिंसा भी और

है। उसका कांटा भी और है, उसका फूल भी और है। क्योंकि फासला न रहा वहां। वहां कोई फासला न रहा; वे एक ही चीज के दो छोर हो गये। तो उसकी हमें पकड़ नहीं है, क्योंकि हम तो चुनाव करके ही जीएंगे।
मॉरेलिटी ने, नैतिकता ने आदमी को बुरी तरह खंड-खंड किया है कि उसने जिंदगी को पूरा स्वीकार नहीं करने दिया। उसने कहाः यह गलत है, और यह सही है। और यह शुभ और यह अशुभ है। और यह मानने योग्य, यह छोड़ने योग्य, और यह भोगने योग्य, यह त्यागने योग्य है। तो जिंदगी को सब तरफ से तोड़-तोड़कर टुकड़े कर दिये हैं।
और अगर भविष्य में कभी भी कोई अच्छी मनुष्यता पैदा होगी, तो किसी न किसी गहरे अर्थ में उसको एम्मारल हो जाना पड़ेगा। उसको नीति से मुक्त होना पड़ेगा। मारल और इम्मॉरल एक ही मामला है। उसमें कोई फर्क नहीं है। कृष्ण एम्मारल हैं। इसलिए पहली दफा जब उपनिषदों का अनुवाद हुआ जर्मनी में तो ड्यूशन ने जो अनुवाद किया जर्मनी में, एक ही चर्चा चली कि उपनिषदों में कोई नैतिक शिक्षा नहीं है। इसमें यह नहीं बताया कि झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, हिंसा मत करो, पर-स्त्री को मत भगाओ; इसमें यह कुछ बताया नहीं गया है, यह कैसा धर्म-ग्रंथ है।
असल में उपनिषद बिल्कुल इम्मॉरल हैं। उपनिषद का ऋषि कैसे कह सकता है
कि पर-स्त्री को मत भगाओ, क्योंकि "पर" है कहां, तो पर-स्त्री कहां! अगर हम पूरी धारणा देखें, तो वह यह कह रहा है कि पर कौन है, और पर-स्त्री कौन है? इम्मॉरल है बिल्कुल। वह यह नहीं कहता कि चोरी मत करो, क्योंकि चोरी करने में मान लिया कि दूसरा है, दूसरे की संपत्ति है; और दूसरे की संपत्ति को चुरानेवाला मैं हूं। यह सब स्वीकृत हो गया है उसमें। उसमें व्यक्तिगत संपत्ति मान ली गयी, व्यक्ति मान लिया गया। और वह संपत्ति जिसकी है उसके पास होना शुभ है और वह मेरे पास होना अशुभ है, सब मान लिया गया है।
तो उपनिषद चुप हैं, क्योंकि इससे कोई मतलब नहीं है। बात बेमानी है। संपत्ति किसकी है? उपनिषद बिल्कुल इम्मॉरल हैं। इधर पांच हजार वर्ष की पीड़ा उसकी मॉरेलिटी है। और मॉरेलिटी करती क्या है कि आदमी को दो हिस्सों में बांट देती है। एक आदमी मारल हो जाता है, एक इम्मॉरल हो जाता है। और मारल आदमी के भीतर इम्मॉरल छिपा होता है और इम्मॉरल के भीतर मारल छिपा रहता है। पापी से पापी को खोजने जाओ, उसके भीतर महात्मा बैठा हुआ है। और महात्मा से महात्मा को खोजने जाओ, उसके भीतर पापी बैठा हुआ है। बस सिर्फ शक्लें उलटी हो गई हैं। कांशस अनकांशस के फर्क हैं। महात्मा कांशस में महात्मा है, अनकांशस में पापी है। और पापी कांशस में पापी है और अनकांशस में महात्मा है। इसलिए पापी निरंतर सपने देखता है महात्मा होने का और महात्मा सपने देखता है पाप का। यह बचाव नहीं है।
इम्मॉरल का मतलब यह है कि हम दोनों को स्वीकार करते हैं कि ये दोनों हैं। और उन दोनों को एक साथ स्वीकार करते हैं और एक साथ जीते हैं। लेकिन मारल वाले को डर लगता है कि कहीं वह इम्मॉरल न हो जाये बाद में। डर लगता है क्योंकि उसका तो तोड़ कर चुनाव है पूरा। और जिस दिन मारल और इम्मॉरल का अस्तित्व चला गया, उस दिन कांशस और अनकांशस का अस्तित्व चला गया। उस दिन आदमी एक है, फिर कोई अनकांशस नहीं है। अनकांशस पैदा हुआ मॉरेलिटी की वजह से। क्योंकि जिसको हमने दबाया वह अनकांशस बन गया। और अगर कुछ नहीं दबाया है तो आदमी इकट्ठा हो जाएगा, उसके लिए फिर कोई चेतन-अचेतन का फासला नहीं है, वह सब इकट्ठा है। वह जो इकट्ठा आदमी है उसकी सुरभि, उसका सौंदर्य, उसका संगीत दूसरा है।
-बंबई, 14 दिसंबर, 1969

कहा कहूं उस देस की
चौथा प्रवचन

दर्शन--ज्ञान--चरित्र

प्रश्नः ज्ञान, दर्शन और चरित्र ये रत्नत्रयी रूप मुक्ति-पथ के प्राप्ति का उपाय तीर्थंकरों ने बताया है, क्या आप इससे सहमत हैं? ध्यान इन तीनों रत्नों से युक्त होना आवश्यक है?

तीर्थंर्करों ने क्या बतलाया है, यह कहना कठिन है। तीर्थंकरों के संबंध में हम सब क्या बतलाते रहते हैं, यही समझना आसान है। तीर्थंर्करों ने क्या कहा है, यह बिना तीर्थंर्कर हुए नहीं समझा जा सकता है। असल में, जिस चेतना के तल पर जो बात कही जाती है, उसी तल पर समझी जा सकती है। और जब नीचे की चेतना के तल पर समझी जा सकती है, और जब नीचे की चेतना के तल पर उस बात को समझने की कोशिश होती है, तो सब विकृत हो जाता है।
तीर्थंकर के जो शब्द हमें उपलब्ध हैं, वे ठीक-ठीक उनके नहीं हैं, बल्कि उन लोगों के हैं, जिन्होंने रिकॉर्ड किया है, लिखा है। और ये लोग अत्यंत नीचे तल के लोग थे। और दुनिया में जब भी ईश्वरीय अनुभूति के कोई भी शब्द कहे गए हैं, तो अक्सर वे नीचे के तल के द्वारा लिखे गए हैं। और यह भी स्मरण रखें कि जब आप उनको पढ़ते हैं, तब भी आप वही अर्थ नहीं समझ पाते हैं, जो उनमें हैं। आप वही अर्थ समझ पाते हैं, जो आप समझ सकते हैं।
इसे फिर से दोहरा दूं। जब आप गीता को, कुरान को, बाइबिल को, महावीर को,
या बुद्ध के वचनों को पढ़ते हैं, तो आप वही अर्थ समझ पाते हैं, जो आप समझ सकते हैं। अर्थ आपकी चेतना के तल से ऊपर कभी नहीं हो सकता। शब्द किसी के हों, अर्थ आपका ही होता है। वाणी किसी की भी हो, उसमें से जो आप निकालते हैं व्याख्या, वह आपकी ही होती है।
मैं यहां बोल रहा हूं, तो आप सोचते हों कि मैं जो बोल रहा हूं, वही आप सुन रहे हैं, तो आप गलती में होंगे। क्योंकि मैं जो बोल रहा हूं, अगर आप वही सुन लें, तो आप सब एक ही बात सुन लेंगे। लेकिन जरा आप एक-दूसरे से चर्चा करेंगे, तब आपको पता चल जाएगा कि आपने एक ही बात नहीं सुनी है। आप सब विवाद में पड़ जाएंगे कि मैंने क्या कहा! यह इस बात की सूचना है कि आपने वह सुना, जो आप सुन सकते थे। दूसरे ने वह सुना, जो वह सुन सकता था।
हर आदमी अपने तईं सुन रहा है और समझ रहा है। इसलिए कृपा करें, तीर्थंकरों को, पैगंबरों को बीच में न घसीटें। उनकी व्यर्थ फजीहत हो जाती है और कुछ भी नहीं होता है। अच्छा हो कि आप अपनी तईं समझें कि बात क्या है। यह जो कहा गया है कि ज्ञान, दर्शन और चरित्र, इस तीन की जो साधना कर लेता है, वह मुक्ति-पद को उपलब्ध हो जाता है। यह जरूर कहा होगा। लेकिन जो समझा गया है, वह यह समझा गया है कि ज्ञान का अर्थ है, शास्त्रों को याद कर लो। और दर्शन का यह अर्थ है कि श्रद्धा उत्पन्न कर लो। और चरित्र का अर्थ है कि इतने गज कपड़ा रखो, इतना खाना खाओ, इतनी देर सोओ, इस तरह उठो, इस तरह बैठो। यह चरित्र है। इतने-इतने शास्त्रों को याद कर लो, यह ज्ञान है। और श्रद्धा ले आओ तीर्थंकरों पर, अवतारों पर, तो यह दर्शन है।
निश्चित ही अलग-अलग धर्म का अलग-अलग ज्ञान होगा, क्योंकि अलग-अलग धर्म
की अलग-अलग किताब है। जो मुसलमान के लिए ज्ञान है, वह जैनी के लिए अज्ञान है। और जो ईसाइयों के लिए अज्ञान है, वह हिंदुओं के लिए ज्ञान है। तो दुनिया में बहुत ज्ञान है। जब कि ज्ञान एक ही हो सकता है। शास्त्र अलग-अलग ज्ञान देते हैं। इसलिए पक्का समझ लें, शास्त्रों में ज्ञान नहीं होता, क्योंकि ज्ञान एक ही हो सकता है। शास्त्रों को याद करके जो हम सीख लेते हैं, वह उसे हम ज्ञान समझ लेते हैं, जब कि वह ज्ञान नहीं, मात्र स्मृति है, मेमोरी है, लर्निंग है।
ये टेप-रिकॉर्ड यहां किए जा रहे हैं, ये आपसे ज्यादा ज्ञानी हैं। क्योंकि जो मैं कहूंगा, जितना अच्छा आप रख सकेंगे, उससे ज्यादा ये रख लेंगे। यह स्मृति जो आपको पैदा हो जाएगी, भूल से इसको ज्ञान मत समझ लेना, यह केवल रिकॉर्डिंग है। यह प्राकृतिक मस्तिष्क कर रहा है, यह अप्राकृतिक

मस्तिष्क कर रहा है। इसमें कोई बहुत भेद नहीं है। यह ज्यादा उचित है, क्योंकि यह भूल-चूक बिल्कुल नहीं करता। आज नहीं कल, सब मशीनें ईजाद हो जाएंगी, तब आपको स्मरण रखने की कोई भी जरूरत नहीं रह जाएगी। तब आप बिल्कुल ज्ञान से शून्य हो जाएंगे, तब आपके पास कोई ज्ञान नहीं होगा।
किताबों के कचरे को जो ज्ञान समझ लेता है, वह गलती में है। यह ज्ञान नहीं है। और तीर्थंकरों पर श्रद्धा लाना दर्शन नहीं है। क्योंकि मुसलमान कहते हैं कि मोहम्मद पर श्रद्धा ले आओ, तो दर्शन हो गया। और ईसाई कहते हैं कि ईसा पर श्रद्धा ले आओ तो सब ठीक हो गया। और अगर जैनों से पूछें तो वे कहेंगे, यह सब मिथ्या श्रद्धा है--ईसा पर, या मोहम्मद पर। ये कोई ज्ञानी हैं? ये कोई तीर्थंकर हैं? ये कोई सर्वज्ञ हैं? ये तो कुछ भी नहीं हैं, ये मिथ्या ज्ञानी हैं। ये ही उनके लोग कहेंगे कि सब मिथ्या ज्ञानी हैं।
ये जो झगड़े हैं श्रद्धा के, अगर दूसरे पर श्रद्धा लाइएगा, झगड़ा निश्चित है। क्योंकि कौन किस पर लाएगा, वह लड़ने लगेगा। इसलिए श्रद्धा का यह अर्थ भी नहीं हो सकता। श्रद्धा ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें झगड़ा और विवाद खड़ा न हो, तभी वह सम्यक होगी। और ज्ञान ऐसा होना चाहिए जो एक हो, तभी वह सम्यक होगा। और जिसको चरित्र कहते हैं, वह तो एक अदभुत बात हो गई है। चरित्र को तो हम इतने नीचे स्तर पर उतार लाए हैं कि विवेकानंद को अमरीका में कहना पड़ा कि हिंदुस्तान का सारा धर्म चौके-चूल्हे का धर्म हो गया है। और विवेकानंद को कहना पड़ा कि अगर ऐसे ही चलता रहा, तो कुछ दिनों में मंदिरों की कोई जरूरत नहीं, पाकशास्त्र काफी होगा। क्या खाना, क्या पीना, क्या पहनना, यह पर्याप्त है। जो ठीक से खाने-पीने का मामला जान जाता है, वह परमात्मा को उपलब्ध हो जाता है। यह चरित्र है! ये कोई बातें ठीक नहीं हैं। मुझे जो प्रतीत होता है, वह मैं आपको कहूं। दर्शन का अर्थ है, स्वयं के
जो भीतर है उसके बोध को उपलब्ध होना। दर्शन का द्वार ध्यान है। ध्यान प्राथमिक कड़ी है, उसके बिना कुछ भी न होगा। जो ध्यान में प्रविष्ट होगा, उसे स्वयं का दर्शन होता है। उसे दिखाई पड़ता है, कौन मेरे भीतर है, मैं कौन हूं। उसे अंतर बोध होता है कि मैं कौन हूं, तो वह साक्षात्कार करता है कि मेरी सत्ता क्या है, तब उसे ज्ञान उत्पन्न होता है।
यह जान कर कि मैं कौन हूं, पहले दर्शन होता है। दर्शन जब स्थापित हो जाता है भीतर, श्रद्धा बन जाता है, तो ज्ञान में परिणत हो जाता है। अगर मैं कोई चीज आपके सामने लाऊं, तो पहले उसका दर्शन होगा। और तब आप उसे पहचानेंगे, प्रत्यभिज्ञा होगी और ज्ञान होगा।
छोटे बच्चे जब पैदा होते हैं, तो उनको केवल दर्शन होता है, ज्ञान नहीं होता। क्योंकि कोई प्रत्यभिज्ञा नहीं होती है। चीजें वे देखते जरूर हैं, लेकिन पहचान नहीं पाते। ऐसे ही जब व्यक्ति पहले अपने भीतर जाता है, तो आत्मा को भी देखा तो नहीं है, पहले दर्शन होता है। सिर्फ दिखाई पड़ता है कोई सत्य, कोई अनुभूति। फिर क्रमशः परिचित होने पर, बार-बार प्रविष्ट होने पर यह ख्याल में स्मृति प्रगाढ़ होती है और दिखाई पड़ता जो था, वह ज्ञान बन जाता है।
ज्ञान का अर्थ, दर्शन का प्रगाढ़ हो जाना है। ज्ञान का अर्थ है दर्शन
का गहरे प्रविष्ट हो जाना। दर्शन जब परिपूर्ण रूप से प्रगाढ़ हो जाता है, तब ज्ञान हो जाता है। और जब ज्ञान परिपूर्ण रूप से प्रगाढ़ हो जाता है, तो चरित्र बन जाता है। क्योंकि जो चीज मुझे स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती है, उसके विपरीत जाना असंभव हो जाता है। जो मुझे स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती है, उसके विपरीत जाना बिल्कुल असंभव है।
मैंने सुना है, ईरान में एक बहुत बड़ा जौहरी हुआ है। उसकी मृत्यु हो गई। उसके मर जाने पर उसकी विधवा पत्नी बची और एक छोटा बच्चा बचा और उसका छोटा भाई बचा। छोटे भाई ने सारा व्यापार सम्हाल लिया। वह विधवा धीरे-धीरे राह देखती रही कि उसका बच्चा बड़ा होगा और एक दिन वह भी व्यापार का हिस्सेदार हो जाएगा। जब लड़का बड़ा हुआ, तो उसकी मां ने कहा कि मैंने कुछ बहुमूल्य हीरे-जवाहरात छिपा कर रखे हुए हैं। तू बड़ा हो जाए, उस दिन तुझे सौंप दूं। उसने एक पोटली दी, जिसमें कुछ बहुमूल्य पत्थर थे। और उसने कहाः तू अपने काका के पास जा और उनको कहना कि इनको बेच दे।

वह गया। उसने अपने काका को कहा कि अब समय आ गया कि मैं बड़ा हो गया। अब मैं भी कुछ कारोबार करूं। तो ये हीरे-जवाहरात बेच दें। काका ने वह कपड़ा खोल कर देखा और उस लड़के से कहाः पोटली बंद रखो और अभी घर ले जाओ। अभी बाजार-भाव ठीक नहीं है। कुछ दिनों बाद जब बाजार-भाव ठीक होंगे, तो इन्हें बेच देंगे। और एक बात स्मरण रखो, कल से घंटा भर दुकान पर जरूर आने लगो।
वे हीरे-जवाहरात वापस भेज दिए गए, पुनः सम्हाल कर तिजोड़ी में बंद कर दिए गए। वह लड़का एक दिन घंटे भर के लिए रोज दुकान पर जाने लगा। कोई साल-छह महीने बीतने पर एक संध्या काका उस लड़के के घर गया और उसने कहाः अपने वे हीरे-जवाहरात बाहर निकाल लाओ। वह लड़का गया। उसने पोटली खोली, देख कर हंसा और बाहर घूरे पर सबको फेंक आया। उसकी मां तो हैरान रह गई। उसने कहाः यह क्या करते हो? वह बोलाः यह सब नकली कांच के टुकड़े हैं। इनमें कुछ मूल्य नहीं है। उसके काका ने कहाः लेकिन अगर यह मैं कहता, तो बड़ा धोखा और बड़ी गड़बड़ हो जाती। अब तुम्हें दिखाई पड़ा, बात खत्म हो गई। दिख गया, ज्ञान हो गया, आचरण भी हो गया। दर्शन हुआ कि झूठे हैं, ज्ञान हुआ कि मूल्य नहीं; आचरण हो गया कि घूरे पर फेंक दिए गए।
अगर दर्शन हो जाए, तो ज्ञान अनिवार्य है। और ज्ञान हो जाए, तो चरित्र अनिवार्य है। चरित्र पहले नहीं है, अंतिम है। लेकिन आज अगर पूछने जाएं लोगों से, तो वे कहते हैं, पहले चरित्र को साधो, फिर ज्ञान उत्पन्न होगा। जब कि उनको ही त्रिरत्न कहते हैं--सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान, सम्यक चारिष्य। वह चारिष्य पीछे है, शिखर है। लेकिन वे कहते हैं, पहले चारिष्य साधो--पहले कपड़े बदलो, खाना बदलो; यह करो, वह करो--फिर ज्ञान होगा। जब कि सच यह है कि ज्ञान हो जाए, तो चरित्र अपने से बदल जाता है। ज्ञान मूल है। ज्ञान वास्तविक क्रांति है। वहीं ट्रांसफार्मेशन है। वह आ जाए, तो सब बदल जाता है।
अगर भीतर मुझे दिखने लगे कि क्या ठीक है, तो क्या आप सोचते हैं, मैं गलत कर सकता हूं? आज तक दुनिया में किसी ने नहीं किया। गलत तभी तक हो सकता है, जब तक कि दूसरे कहते हों गलत है, लेकिन मुझे दिखाई प.ड़ता हो, किसी न किसी तल पर, कि ठीक है। दूसरों का ज्ञान हो, और मैं उस पर आचरण करूं, तो तकलीफ है, तो मुश्किल है। मेरा ज्ञान हो तो आचरण को कोई तकलीफ ही नहीं है। ज्ञान हो, तो आचरण उसके पीछे छाया की भांति चला आता है। क्यों? क्योंकि अंतस असली बात है। आचरण तो गौण बात है। जो मेरे भीतर होता है, वही मेरे बाहर निकलता है। अगर मेरे भीतर ज्ञान है, तो बाहर जो निकलेगा, वह सम्यक आचार होगा। और अगर मेरे भीतर अज्ञान है, तो बाहर जो निकलेगा, वह अनाचार होगा।
इसलिए मेरा जोर ज्ञान पर है। और ज्ञान का जो द्वार है वह ध्यान है। ध्यान के बिना किसी को कभी ज्ञान उपलब्ध नहीं हो सकता है। शास्त्रों से नहीं--ध्यान से। दूसरों से नहीं--स्वयं से। स्मृति के द्वारा नहीं, प्रत्यक्ष के द्वारा ज्ञान उत्पन्न होता है। और ऐसा ज्ञान जब उत्पन्न होता है, तो जीवन आनंद से भर जाता है। और जीवन आचरण से भर जाता है। उस आचरण की सुगंध ही दूसरी है, क्योंकि वह आरोपित और जबरदस्ती ठोका-पीटा नहीं होता है। वह सहज निकलता है। यह मैं समझता हूं, समझ में बात आई होगी।
जो खास-खास प्रश्न थे उनके उत्तर दे दिए हैं। और यों तो प्रश्न एक तरह
की मानसिक बीमारी है और इसलिए उसके उत्तर देना खाज को खुजलाने जैसा होता है। मजबूरी में कि आपको न लगे ऐसा कि आप पूछते हैं, मैं उत्तर नहीं देता, इसलिए देता हूं। लेकिन ऐसा मत समझ लेना कि मैं कोई प्रशंसा करता हूं बहुत कि आपके भीतर बहुत प्रश्न उठते हैं। क्यों? क्योंकि सब प्रश्नों के उत्तर भी मिल जाएं, तो पक्का समझिए कि एक भी प्रश्न का उत्तर आपको नहीं मिलेगा। लाख उत्तर मिल जाएं, तो भी आपको उत्तर नहीं मिलेगा। क्योंकि प्रश्न भीतर पैदा होता है, उत्तर बाहर से आता है, जोड़ कहीं बैठता नहीं। आपका प्रश्न और मेरा उत्तर सटेगा कहां? आपका उत्तर ही आपके प्रश्न को काट सकता है। इसलिए सब उत्तर देकर भी जानता हूं कि उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। अगर इतनी ही बात समझा पाऊं कि किसी का उत्तर आपका उत्तर नहीं बन सकता, तो बात काफी हो जाएगी। आपके जिस तल से प्रश्न उठ जाए, उसी तल से उत्तर भी आएगा। इसलिए मौन

हो जाएं और जहां से प्रश्न उठ रहा है, उस केंद्र के पीछे पहुंचने की कोशिश करें कि कहां से ये प्रश्न उठते हैं।
एक साधु बोल रहा था और हजारों लोग उसे सुन रहे थे। और उसने कहा कि जानो
कि तुम कौन हो। एक आदमी बीच में खड़ा हुआ और उसने कहाः ठीक से समझाइए कि मैं कौन हूं। उस साधु ने अपना बोलना बंद किया, वह मंच के नीचे उतरा है। उसने भीड़ से कहाः जरा रास्ता छोड़ दो, उस आदमी को मैं पकडूंगा। रास्ता भीड़ ने छोड़ दिया और लोग घबड़ा गए कि यह क्या पागलपन है! उसने बेचारे ने प्रश्न पूछा! वह आदमी भी कंपा कि यह क्या मुश्किल है! वह पकड़ेगा किसलिए? क्योंकि जब वह पूछ ही लिया है, तो इसको उत्तर देना ही पड़ेगा। भीड़ छंट कर खड़ी रह गई। वह आदमी बीच में खड़ा रह गया और बड़ी पशोपेश में पड़ गया। वह साधु पहुंचा और जाकर उसकी गर्दन जोर से पकड़ ली, और उससे कहाः फिर से पूछ, तो तेरे को उत्तर दूं। वह तो बहुत घबड़ा गया कि किस मुसीबत में पड़ गया हूं। यह भली बातें कहता आदमी, यह क्या करने लगा? मारेगा या पीटेगा, यह क्या करेगा? यह क्या उतर हुआ!
वह आदमी घबड़ा कर खड़ा हो गया, उसे कुछ प्रश्न नहीं सूझा। साधु ने कहाः पहला तो मतलब यह हुआ कि प्रश्न बहुत गहरा नहीं है, क्योंकि मैंने गर्दन पकड़ी और वह हवा हो गया। ऐसे ही पूछ लिया मालूम होता है। कि आ गए हैं, तो चलो पूछ लें। ऐसे प्रश्नों का कोई मूल्य नहीं होता है, उस आदमी से उसने कहा। और उसने कहाः दूसरी बात यह है कि अगर पूछता ही हो, तो ठीक से पूछ फिर से। उस आदमी ने हिम्मत जुटाई, उसने कहा कि मैं पूछता हूं महाराज कि मैं कौन हूं? उस साधु ने कहाः अब जहां से यह प्रश्न उठा है--कहीं तो उठा है तेरे भीतर से। एक क्षण था कि यह प्रश्न नहीं था, एक क्षण हुआ कि यह प्रश्न उठा, फिर एक क्षण आया कि तूने प्रश्न प्रकट कर दिया। तो कहीं से यह उठा है, आकर बाहर प्रकट हो गया है--जहां से उठा है, वह जगह तो अभी भी तेरे भीतर है। तो कृपा कर और इसी प्रश्न की सीढ़ी पर वापस लौट जा। जहां से यह उठा है, वहीं जा। और उस जड़ को पकड़, जहां से यह उठता है, और तुझे उत्तर मिल जाएगा। और न केवल इसका उत्तर बल्कि, शेष सारे प्रश्नों का भी।
जहां से प्रश्न उठते हैं, वहीं चले जाएं। हम क्या करते हैं, प्रश्न उठते हैं भीतर, खोजने चले जाते हैं बाहर। इसी से भूल हो जाती है। प्रश्न उठा भीतर और हम चले पूछने किसी से कि इसका क्या उत्तर होगा? जहां से प्रश्न उठा है, वहीं उतर जाइए। और आप दंग रह जाएंगे, प्रश्न के नीचे ही उत्तर भी छिपा हुआ है। हर प्रश्न अपने उत्तर को लिए है, क्योंकि जिसका उत्तर आपके भीतर न हो, उसका प्रश्न आपके भीतर कभी नहीं उठ सकता है। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक तरफ प्रश्न है, दूसरी तरफ उत्तर है। जो उलटा कर जानता है, वह प्रश्न के पीछे उत्तर को उपलब्ध कर लेता है। एक पहलू प्रश्न और दूसरा पहलू उत्तर है। एक ही सिक्के के दो पहलू। जिसके भीतर प्रश्न है, उसके भीतर उत्तर है।
लेकिन पहली बातः प्रश्न असली हो कि गर्दन पकड़ने से भूल न जाए। और दूसरी बात भीतर उतरने की इच्छा गहरी हो, तो सारे प्रश्नों के उत्तर मनुष्य को अपने भीतर मिल सकते हैं।
और देखिए, महावीर जब गए साधना में, कितने ग्रंथ साथ ले गए थे, पता है?
जब मोहम्मद पहाड़ पर गए, कितनी किताबें पोटली में थीं? जब क्राइस्ट वनों में खोज को गए, तो अच्छा होता कि किसी पुस्तकालय में जाते। फिर आप सोचते हैं, किसी और से पूछा जाकर? अगर किसी और से पूछना होता, तो नगर अच्छे थे, जंगल में जाने की क्या जरूरत थी? किसी से नहीं पूछा। कहीं खोजा नहीं, जाकर बैठ गए। पकड़ने लगे उस जड़ को जहां से प्रश्न उठता है, उसका पीछा करने लगे। धीरे-धीरे भीतर घुसे और प्रश्न को पकड़ लिया, जहां से वह उठता था।
जिस दिन प्रश्न को पकड़ लिया, जहां से वह उठता है, उसी दिन उत्तर उपलब्ध
हो जाता है। इसलिए मेरे उत्तर का बहुत मूल्य मत मानना। क्योंकि किसी भी उत्तर का कोई मूल्य नहीं है। लोग समझाते हैं कि हमने जो समझाया, उसे गांठ बांध कर रख लेना। और मैं समझाता हूं कि मैंने जो समझाया, वह भूलकर कभी गांठ मत बांध लेना। और जिनने समझाया हो और गांठ बांध ली हो, उनको खोल देना।
लोग समझाते हैं कि एक तरफ हम सच कहते हैं और एक कान से आप सुनते हैं और दूसरे से निकाल देते हैं! मैं कहता हूं कि प्रभु की परम कृपा है कि आपने जो

भी सुना हो एक कान से, दूसरे कान सब निकाल दें। लोग कहते हैं, रोक लेना। मैं कहता हूं निकाल देना। लोग कहते हैं, हमारी बात को सम्हाल कर याद रखना। मैं कहता हूं, सब बातें जो सम्हाल कर रखी हों, फेंक दें, याद को खाली कर लें। जिस दिन याद आदमी की बातों से खाली हो जाती है, उसी दिन परमात्मा की याद चालू हो जाती है। और जिस दिन दूसरों के दिए उत्तर फेंक दिए जाते हैं और अपने प्रश्नों का पीछा किया जाता है, उस दिन अपने उत्तर मिल जाते हैं। इसलिए बहुत प्रश्न-उत्तर की बात छोड़ दें। थोड़े से समय के लिए ध्यान के लिए बैठ जाएं।
इसलिए मैं कहता हूं, वैज्ञानिक धर्म मानने को नहीं कहता, वैज्ञानिक धर्म जानने की विधि की बात करता है।

कहा कहूं उस देस की
पांचवां प्रवचन

प्रार्थना क्या है

एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि खोज छोड़ देनी है। और अगर खोज हम छोड़ दें, तो फिर तो विज्ञान का जन्म नहीं हो सकेगा?

मैंने जो कहा है, खोज छोड़ देनी है, वह कहा है उस सत्य को पाने के लिए, जो हमारे भीतर है, उसकी खोज करनी व्यर्थ है, बाधा है। लेकिन हमारे बाहर भी सत्य है। और हमसे बाहर जो सत्य है, उसे तो बिना खोज के कभी नहीं पाया जा सकता। इसलिए दुनिया में दो दिशाएं हैंः एक जो हमसे बाहर जाती है। हमसे बाहर जानेवाला जो जगत है, अगर उसके सत्य की खोज करनी हो, जो विज्ञान करता है, तो खोज करनी ही पड़ेगी। खोज के बिना बाहर के जगत का कोई सत्य उपलब्ध नहीं हो सकता।
एक भीतर का जगत है। अगर भीतर के सत्य की खोज करनी है, तो खोज बिल्कुल छोड़ देनी पड़ेगी। अगर खोज की, तो बाधा पड़ जाएगी, और भीतर का सत्य उपलब्ध नहीं हो सकता है। और ये दोनों सत्य किसी एक ही बड़े सत्य के भाग हैं। भीतर और बाहर किसी एक ही वस्तु के दो विस्तार हैं। लेकिन जो बाहर शुरू करना चाहता है, उसके लिए तो अंतहीन खोज है--खोज करनी पड़ेगी, खोज करनी पड़ेगी, खोज करनी पड़ेगी। जो भीतर से शुरू करना चाहता हो, उसे खोज का अंत इसी क्षण कर देना पड़ेगा, तो भीतर की खोज शुरू होगी।
विज्ञान खोज है, और धर्म अखोज है।
विज्ञान खोज कर पाता है, धर्म स्वयं को खोकर पाता है; खोज कर नहीं पाता।
तो मैंने जो बात कही है, वह विज्ञान को ध्यान में लेकर नहीं कही है। वह मैंने साधक को, साधना को, धर्म को ध्यान में रख कर कही है कि जिसे स्वयं के सत्य को पाना है, उसे सब छोड़ देना चाहिए। विज्ञान की खोज में जिसे जाना है, उसे खोज करनी पड़ेगी। लेकिन ध्यान रहे, कोई कितना ही बड़ा वैज्ञानिक हो जाए और बाहर के जगत के कितने ही सत्य खोज ले, तो भी स्वयं के सत्य जानने के संबंध में वह उतना ही अज्ञानी होता है, जितना कोई साधारणजन। इससे उलटी बात भी सच है।
कोई कितना ही परम आत्मज्ञानी हो जाए, कितना ही बड़ा आत्मज्ञानी हो जाए,
वह विज्ञान के संबंध में उतना ही अज्ञानी होता है, जितना कोई साधारणजन। कोई महावीर, बुद्ध, या कृष्ण के पास आप पहुंच जाएं, एक छोटा सा मोटर ही लेकर कि जरा इसको सुधार दें, तो आत्म-ज्ञान काम नहीं पड़ेगा। और आइंस्टीन के पास आप पहुंच जाएं और आत्मा के रहस्य के संबंध में कुछ जानना चाहें, तो कोई आइंस्टीन की वैज्ञानिकता काम नहीं पड़ेगी।
वैज्ञानिकता एक तरह की खोज है, एक आयाम है। धर्म बिल्कुल दूसरा आयाम है। दूसरी ही दिशा है। और इसीलिए तो यह नुकसान हुआ। पूरब के मुल्कों ने, भारत जैसे मुल्कों ने भीतर की खोज की इसलिए विज्ञान पैदा नहीं हो सका। क्योंकि भीतर के सत्य को जानने का रास्ता बिल्कुल ही उलटा है। वहां तर्क भी छोड़ देना है, विचार भी छोड़ देना है, इच्छा भी छोड़ देनी है। खोज भी छोड़ देनी है। सब छोड़ देना है। भीतर की खोज का रास्ता सब छोड़ देने का है। इसलिए भारत में विज्ञान पैदा नहीं हो सका।
पश्चिम ने बाहर की खोज की। बाहर की खोज करनी है, तो तर्क करना पड़ेगा, विचार करना पड़ेगा, प्रयोग करना पड़ेगा, खोज करनी पड़ेगी, तब विज्ञान का सत्य उपलब्ध होता है। पश्चिम ने विज्ञान के ज्ञान को तो पाया, लेकिन धर्म के मामले में वह शून्य हो गया।
और अगर किसी संस्कृति को पूरा होना है, तो उसमें ऐसे लोग भी चाहिए जो भीतर खोजते रहें, जो बाहर की सब खोज छोड़ दें, और ऐसे लोग भी चाहिए, जो बाहर खोजते रहें और बाहर के सत्य को भी जानते रहें।
हालांकि एक ही आदमी एक ही साथ वैज्ञानिक और धार्मिक भी हो सकता है।

कोई ऐसा न सोचे कि कोई धार्मिक हुआ, तो वह वैज्ञानिक नहीं हो सकता। कोई ऐसा भी न सोचे कि कोई वैज्ञानिक हो गया, तो वह धार्मिक नहीं हो सकता। लेकिन अगर ये दोनों काम करने हैं, तो दो दिशाओं में काम करना पड़ेगा। जब वह विज्ञान की खोज करेगा, तो तर्क-विचार और प्रयोग का उपयोग करना पड़ेगा। और जब स्वयं की खोज करेगा, तो तर्क, विचार और प्रयोग छोड़ देना पड़ेगा। एक ही आदमी दोनों हो सकता है, लेकिन दोनों होने के लिए उसे दो तरह के प्रयोग करने पड़ेंगे।
अगर किसी देश ने यह तय किया कि हम सब खोज छोड़ देंगे, कुछ न खोजेंगे, तो देश शांत तो हो जाएगा, लेकिन शक्तिहीन हो जाएगा। शांत तो हो जाएगा, सुखी हो जाएगा, लेकिन बहुत तरह के कष्टों से घिर जाएगा। भीतर तो आनंदित हो जाएगा, बाहर गुलाम हो जाएगा, दीन-हीन हो जाएगा। किसी देश ने यह तय किया कि हम बाहर की खोज करेंगे, तो वह संपन्न हो जाएगा, शक्तिशाली हो जाएगा, समृद्ध हो जाएगा, कष्ट बिल्कुल न रह जाएंगे, लेकिन भीतर अशांति और दुख और विक्षिप्तता घेर लेगी।
तो किसी देश को अगर सम्यक संस्कृति पैदा करनी हो, तो दोनों दिशाओं में काम करना पड़ेगा। और अगर किसी व्यक्ति को मौज हो, तो दोनों दिशाओं में काम कर सकता है। वैसे परम लक्ष्य मनुष्य का धर्म है। विज्ञान केवल जीवन को गुजरने का रास्ता है, उसे थोड़ा ज्यादा सुंदर, ज्यादा शक्तिशाली, ज्यादा संपन्न बना सकता है। लेकिन परम शांति और परम आनंद तो धर्म से ही उपलब्ध होते हैं।

दूसरे मित्र ने जो पूछा है कि प्रार्थना किसकी करें?

अगर प्रार्थना किसी की भी की, तो वह प्रार्थना नहीं होगी। लेकिन प्रार्थना से मतलब ऐसा निकलता है कि किसी की करनी है और किसीलिए करनी है। कोई कारण होगा, कोई प्रार्थी होगा और किसी से करेगा। तो हमें ऐसा लगेगा, प्रार्थना तो हो ही नहीं सकती है, अगर कोई कारण नहीं है और किसी से करनेवाला नहीं है। अकेला करनेवाला क्या करेगा, कैसे करेगा!
मेरा कहना यह है कि प्रार्थना, अगर ठीक से हम समझें, तो कोई क्रिया नहीं है, बल्कि एक वृत्ति है--प्रेयरफुल मूड है। प्रेयर नहीं है सवाल-- प्रेयरफुल मूड। प्रार्थना नहीं है सवाल प्रार्थनापूर्ण हृदय।
यह बिल्कुल और बात है। आप रास्ते से निकल रहे हैं। एक प्रार्थना- शून्य हृदय है। रास्ते के किनारे कोई गिर पड़ा है और मर रहा है, वह प्रार्थना-शून्य हृदय ऐसे निकल जाएगा, जैसे रास्ते पर कुछ नहीं हुआ। लेकिन प्रार्थनापूर्ण हृदय जो है, वह कुछ करेगा; वह जो गिर गया है, उसे उठाएगा। वह चिंता करेगा, दौड़ेगा, उसे कहीं पहुंचाएगा। अगर रास्ते पर कांटे पड़े हैं, तो एक प्रार्थना-शून्य हृदय कांटों से बच कर निकल जाएगा, लेकिन कांटों को उठाएगा नहीं। प्रार्थनापूर्ण हृदय उन कांटों को उठाने का श्रम लेगा; उठाकर उन्हें अलग फेंकेगा।
प्रार्थनापूर्ण हृदय का मतलब हैः प्रेमपूर्ण हृदय। और जब कोई व्यक्ति का प्रेम, एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के प्रति होता है, तो उसे हम प्रेम कहते हैं। और जब किसी व्यक्ति का प्रेम किसी से बंधा नहीं होता, समस्त के प्रति होता है, तब मैं उसे प्रार्थना कहता हूं।
प्रेम है दो व्यक्तियों के बीच का संबंध और प्रार्थना है एक और अनंत
के बीच का संबंध। वह जो सब हमारे चारों तरफ फैला हुआ है--पौधे हैं, पक्षी हैं, सब, उस सबके प्रति जो प्रेमपूर्ण है, वह प्रार्थना में है। प्रार्थना का यह मतलब नहीं है कि किसी मंदिर में कोई आदमी हाथ जोड़कर बैठा है और वह प्रार्थना कर रहा है।
प्रार्थना का मतलब हैः ऐसा व्यक्ति, जो जीवन में जहां भी आंख डालता है, हाथ रखता है, पैर रखता है, श्वास लेता है, तो हर घड़ी प्रेम से भरा हुआ है, प्रेमपूर्ण है।
एक मुसलमान फकीर था। जिंदगी भर मस्जिद गया। बूढ़ा हो गया है! एक दिन लोगों ने मस्जिद में न देखा तो सोचा, क्या मर गया! क्योंकि वह जीते जी तो

नहीं मस्जिद आए, यह असंभव है। तो वे उसके घर गए। वह तो बैठा था बाहर दरवाजे पर। खंजड़ी बजा कर गीत गाता था। तो लोगों ने कहाः यह तुम क्या कर रहे हो? आखिरी वक्त नास्तिक हो गए? प्रार्थना नहीं करोगे? उस फकीर ने कहाः प्रार्थना के कारण ही आज मंदिर नहीं आ सका। उन्होंने कहाः क्या मतलब? मस्जिद नहीं आए, प्रार्थना के कारण? मस्जिद के बिना प्रार्थना हो कैसे सकती है? उस आदमी ने अपनी छाती खोल दी। उसकी छाती में एक नासूर हो गया है, उसमें कीड़े पड़ गए हैं। उसने कहा कि कल मैं गया था और जब नमाज पढ़ने के लिए झुका, तो कुछ कीड़े मेरी छाती से नीचे गिर गए और मुझे ख्याल हुआ कि ये तो मर जाएंगे, बिना नासूर के जीएंगे कैसे! तो फिर आज मैं झुक नहीं सकता हूं। प्रार्थना के कारण आज मस्जिद नहीं आ सका!
यह प्रार्थना बहुत कम लोगों की समझ में आएगी। लेकिन जब मैं प्रार्थना
की बात करता हूं, तो मेरी प्रार्थना का यही अर्थ हैः प्रेयरफुल मूड, प्रेयरफुल एटीट्यूड। वह जो हम जीवन में जी रहे हैं, उसमें सब तरफ हम कितने प्रार्थनापूर्ण हो सकते हैं, यह सवाल है।
किसी भगवान और किसी देवता की आराधना की बात नहीं है। प्रार्थना मेरे लिए प्रेम का ही अर्थ रखती है, और मैं निरंतर कहता हूं, प्रेम ही प्रार्थना है। अगर हम एक व्यक्ति से बंध जाते हैं, तो प्रेम की धारा रुक जाती है और प्रेम मोह बन जाता है। और अगर हम ठहर जाते हैं, और प्रेम की धारा मुक्त हो जाती है, तो प्रेम प्रार्थना बन जाती है। इसे थोड़ा ख्याल कर लेना।
अगर एक व्यक्ति पर प्रेम रुक जाए, तो मोह बन जाता है और बंधन का कारण
हो जाता है। और अगर फैलता चला जाए प्रेम, और सब पर फैलता चला जाए, और धीरे- धीरे बेशर्त हो जाये, अनकंडिशनल हो जाए, हमारी कोई शर्त न रह जाए कि हम इससे प्रेम करेंगे, हमारा केवल एक भाव रह जाए कि हम प्रेम ही कर सकते हैं, कुछ और कर ही नहीं सकते... ।
राबिया नाम की एक फकीर औरत थी। कुरान में कहीं लिखा है, "शैतान से घृणा करो", उसने वह लकीर काट दी है। कोई मित्र ठहरा हुआ था, उसने कहाः कुरान में संशोधन किसने किया? कुरान में कोई संशोधन कर सकता है? धर्मग्रंथ में तो संशोधन नहीं हो सकता! राबिया ने कहाः मुझे ही करना पड़ा, क्योंकि इसमें लिखा है कि शैतान से घृणा करो, और मैं तो घृणा करने में असमर्थ हो गई हूं। जब से प्रार्थना पूरी हुई, तब से मैं घृणा नहीं कर सकती हूं। अगर शैतान मेरे सामने खड़ा हो जाए, तो भी मैं प्रेम करने को ही मजबूर हूं। यह सवाल उसका नहीं है कि वह कौन है। सवाल मेरा है, क्योंकि मेरे पास सिवाय प्रेम के कुछ है ही नहीं। मुझे यह लकीर काट देनी पड़ेगी। यह लकीर ठीक नहीं है। अब तो मेरे सामने भगवान आए तो, और शैतान आए तो, मैं प्रार्थना ही कर सकती हूं। मैं प्रेम ही कर सकती हूं। और इसलिए मुश्किल है पहचानना कि कौन है शैतान और कौन है भगवान। और अब पहचानने की कोई जरूरत भी नहीं है, क्योंकि वही मुझे करना है, चाहे कोई भी हो!
प्रेम एक पर रुक कर मोह बन जाता है, बंधन बन जाता है। जैसे नदी रुक जाए
और डबरा बन जाए। समझ लेना, नदी रुक जाए और डबरा बन जाए। बहे न, गोल घूमने लगे। एक तालाब बनेगा, सड़ेगा, खराब होगा, बहेगा नहीं। नदी अगर रुक जाए, तो डबरा बन जाती है। और नदी अगर बढ़ जाए और फैल जाए, तो सागर बन जाती है।
वह जो प्रेम की धारा है हमारे भीतर, अगर एक व्यक्ति के आस-पास डबरा बना
ले या दो-चार व्यक्तियों के आस-पास डबरा बना ले--बेटे के पास, पत्नी के पास, मित्र के पास डबरा बना ले, तो प्रेम की धारा वहीं सड़ जाती है। फिर उस प्रेम से सिवाय दुर्गंध के और कुछ नहीं उठता। इसलिए सब परिवार दुर्गंध के केंद्र्र हो गए हैं। वे सब डबरे बन गए हैं, और डबरे में गंध आएगी। सब संबंध हमारे सड़ गए हैं। क्योंकि प्रेम जहां रुका, वहीं सड़ांध शुरू हो जाती है। किसी पति-पत्नी के बीच सड़ांध के सिवाय कुछ भी नहीं है। बाप और बेटे के बीच कुछ नहीं है।
जहां प्रेम रुका, वहीं उनकी निश्छलता गई, उसका निर्दोषपन गया, उसकी ताजगी गई। और हम अपने मन में इस डर से कि कहीं प्रेम सब पर बंट न जाए, रोकने की कोशिश करते हैं। सब रोकने की कोशिश करते हैं कि रुक जाए, तो शायद ज्यादा मिले। और मजा यह है कि रुका कि सड़ा, फिर तो मिलता ही नहीं। बढ़ जाए, फैल जाए,

फैलता चला जाए--जितना फैलेगा प्रेम, जितना अधिकतम तक पहुंचेगा, उतना ही वह प्रार्थना बनता चला जाएगा। और अंत में प्रेम बढ़ते-बढ़ते सागर तक पहुंच जाता है। तब वह प्रेम प्रार्थना बन जाता है।
तो "किससे" का सवाल नहीं है, और किससे आपने पूछा, तो आप इसीलिए पूछ रहे हैं कि किससे बांधें, राम से बांधें, कि कृष्ण से, कि महावीर से, कि बुद्ध से? तो वह जो व्यक्तिगत रूप से प्रेम बांधे हुए है, वैसे ही प्रार्थना तक बांधती है। अगर शिव के मंदिर जाने वाला पागल है, तो राम के मंदिर नहीं जाएगा। अगर कृष्ण का भक्त है, तो वह राम को नमस्कार नहीं करेगा। वह प्रार्थना भी बंधी हुई है। रास्ते पर इतने मंदिर पड़ते हैं--अपना-अपना मंदिर है! मंदिर भी कहीं अपना-अपना हो सकता है? मंदिर भी अपना-अपना! मंदिर तो परमात्मा का हो सकता है। लेकिन सबके अपने-अपने मंदिर हैं। उन मंदिरों में भी संप्रदाय हैं। महावीर को ही माननेवाले एक ही मंदिर में मुकदमेबाजी करेंगे, क्योंकि किसी का महावीर कपड़े पहनता है, किसी का महावीर नंगा रहता है। नंगा रहनेवाला कपड़े नहीं पहनने देगा। कपड़े पहननेवाला नंगा नहीं रहने देगा। और झगड़ा जारी है! बड़े मजे की बात है।
मैंने एक घटना सुनी है कि एक गांव में गणेश का उत्सव होता है, गणेश निकलते हैं। सारे गांव के अलग-अलग लोग अलग-अलग गणेश बनाते हैं। सबके अपने- अपने गणेश हैं। ब्राह्मणों का गणेश अलग है, लोहारों का गणेश अलग है, बनियों का गणेश अलग है, शूद्रों के गणेश अलग हैं। और सबके गणेशों से उनका जलूस निकलता है। सबसे पहले ब्राह्मणों का गणेश होता है। नियम से ऐसा ही चलता है।
लेकिन उस दिन क्या हुआ कि ब्राह्मणों के गणेश के आने में जरा देरी हो
गई और तेलियों के गणेश पहले पहुंच गए। जब ब्राह्मण आए, तब तक तेलियों का गणेश आगे हो गया, यह बरदाश्त के बाहर है। तुम तेलियों के गणेश--और आगे हो गए! तो ब्राह्मणों ने कहाः हटाओ साले तेलियों के गणेश को! गणेश भी तेलियों का है? हटाओ उसको पीछे। कभी ऐसा हुआ है? ब्राह्मणों का गणेश आगे होता है। और तेलियों के गणेश को पीछे हटा दिया गया जबरदस्ती और ब्राह्मणों का गणेश आगे हो गया। अगर गणेश कहीं भी होंगे, तो अपनी खोपड़ी ठोक रहे होंगे।
गणेश से किसी को प्रयोजन है? अपना गणेश! और उसमें भी फर्क है!
प्रार्थना भी बंधती है, वह पूछती है कि किससे? किसकी प्रार्थना करें? किसी की भी नहीं। प्रार्थना का मतलब ही है, सबकी। वह जो समस्त फैला हुआ है, सर्व जो फैला हुआ है, उसके प्रति जो प्रेम का भाव है, उसका नाम प्रार्थना है।
यह हाथ जोड़ने का मामला नहीं है कि हाथ जोड़ लिया, निपट गए। चौबीस घंटे जीने का मामला है। इस तरह जीना है कि सबके प्रति प्रेम बहता रहे, तो प्रार्थना पूरी होगी। लेकिन बेईमानों ने तरकीबें निकाल ली हैं असली प्रार्थना से बचने की। वह दो मिनट में ही जाकर मंदिर में हाथ जोड़ कर लौट आते हैं। कहते हैं, हम प्रार्थना कर आए। ये तरकीबें हैं और बेईमानियां हैं। इस तरह तरकीब यह है कि हम किस तरह बच जाएं प्रार्थना से।
प्रेम ही प्रार्थना है। समस्त के प्रति प्रेम ही प्रार्थना है। हम ऐसे जीएं कि हमारा प्रेम रिक्त न होता हो। हम ऐसे जीएं कि प्रेम बढ़ता ही चला जाता हो। हम ऐसे जीएं कि प्रेम किसी पर रुकता न हो, ठहरता न हो। हम ऐसे जीएं कि धीरे-धीरे हमारा प्रेम बेशर्त हो जाए।
हमारा प्रेम हमेशा शर्तबंद होता है। हम कहते हैं, तुम ऐसा रहोगे, तो
हम प्रेम करेंगे। तुम ऐसा करोगे, तो हम प्रेम करेंगे। तुम प्रेम करोगे, तो हम प्रेम करेंगे। जहां प्रेम पर शर्त लगी, कंडिशन लगी; वहां प्रेम सौदा हो गया और बाजार हो गया। जब मैंने कहा, तब प्रेम करूंगा, जब ऐसा होगा... ।
सुना है मैंने, एक बहुत बड़े को... नाम लेना तो ठीक नहीं, क्योंकि नाम लेना इस मुल्क में बड़े खतरे की झंझट है... एक बड़े संत को जो कि राम के भक्त थे, कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया। उन्होंने कहा कि जब तक धनुषबाण हाथ नहीं लोगे, मैं सिर नहीं झुका सकता! बड़े मजे की बात है, प्रेम में भी शर्त कि धनुषबाण हाथ लोगे, तब हम सिर झुकाएंगे! मतलब, यह सिर भी शर्त से झुकेगा। हमारी पहले मानो, तब हम सिर झुकाएंगे। यह भक्त भगवान का भी मालिक बनने की,

पजेसिव होने की कोशिश कर रहा है। वह कहता है, इस तरह व्यवहार करो, तब हम सिर झुकाएंगे। नहीं तो बात खत्म है, नाता-रिश्ता बंद!
यह जो हमारा मस्तिष्क है, यह प्रार्थनापूर्ण नहीं हो सकता। शर्त से बंधा हुआ आदमी कभी प्रार्थनापूर्ण नहीं हो सकता। बेशर्त। इसलिए नहीं कि तुम कैसे हो, इसलिए कि मैं प्रेम ही दे सकता हूं, प्रेम ही देना चाहता हूं, प्रेम ही देने की मेरी क्षमता है और कुछ मेरे पास नहीं है। तुम क्या करोगे, यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है।
बुद्ध के पास एक दिन सुबह-सुबह एक आदमी आया और उनके ऊपर थूक दिया। बुद्ध ने चादर से अपना मुंह पोंछ लिया और उस आदमी से कहा, "और कुछ कहना है? कोई आदमी आपके ऊपर थूके, तो आप यह कहेंगे या और कुछ कहेंगे? पास के भिक्षु तो क्रोध से भर गए। उन्होंने कहाः यह आप क्या पूछ रहे हैं? कुछ और कहना है?"
बुद्ध ने कहाः जहां तक मैं जानता हूं, इस आदमी के मन में इतना क्रोध है
कि शब्दों से नहीं कह सका है, थूक कर कहा है। लेकिन मैं समझ गया कि इसे कुछ कहना है। क्रोध इतना ज्यादा है कि शब्द से नहीं कह पाता है, थूककर कहता है। प्रेम ज्यादा होता है, आदमी शब्द से नहीं कहता है, किसी को गले लगाकर कहता है। इसने थूककर जो कहा, वह हम समझ गए। अब और भी कुछ कहना है कि बात खत्म हो गई?"
वह आदमी तो हैरान हो गया। उसने यह तो सोचा ही नहीं था कि थूकने का यह उत्तर मिलेगा! उठ कर चला गया। रात भर सो नहीं सका। दूसरे दिन क्षमा मांगने आया। और बुद्ध के पैर पर पड़ गया, आंसू गिराने लगा। जब उठा, तो बुद्ध ने कहाः और कुछ कहना है? आस-पास के भिक्षुओं से कहाः अब क्या कहते हो! देखा न, मैंने तुमसे कल कहा। अब यह आदमी आज भी कुछ कहना चाहता है, लेकिन ऐसे भाव से भर गया कि आंसू गिराता है। शब्द नहीं मिलते, पैर पकड़ता है, शब्द नहीं मिलते। हम समझ गए कि तुम्हें कुछ और कहना है। उस आदमी ने कहाः कुछ और तो नहीं, यही कहना है कि रात भर मैं सो नहीं सका। क्योंकि मुझे लगा कि आज तक सदा आपका प्रेम मिला, थूक कर मैंने अपनी योग्यता खो दी। अब आपका प्रेम मुझे कभी नहीं मिलेगा।
बुद्ध ने कहाः सुना। आश्चर्य! क्या मैं तुम्हें इसलिए प्रेम करता था
कि तुम मेरे ऊपर थूकते नहीं थे? क्या मेरे प्रेम करने का यह कारण था कि तुम थूकते नहीं थे? तुम कारण ही नहीं थे मेरे प्रेम करने में। मैं प्रेम करता हूं, क्योंकि मैं मजबूर हूं, और प्रेम के सिवाय कुछ भी नहीं कर सकता हूं। एक दीया जलता है, कोई भी उसके पास से निकले। वह इसलिए थोड़े ही इसके ऊपर रोशनी गिरती है कि तुम कैसे हो। रोशनी दीये का स्वभाव है, वह गिरती है। कोई भी निकले; दुश्मन निकले, दोस्त निकले। दीये को बुझाने वाला दीये के पास आए, तो भी रोशनी गिरती है।
तो बुद्ध ने कहाः मैं प्रेम करता हूं, क्योंकि मैं प्रेम हूं। तुम कैसे हो, यह बात अर्थहीन है। तुम थूकते हो कि पत्थर मारते हो कि पैर छूते हो, यह बात निष्प्रयोजन है। इससे कोई संगति नहीं है। यह संदर्भ नहीं है। तुम्हें जो करना हो, तुम करो। मुझे जो करना है, मुझे करने दो। मुझे प्रेम करना है। मुझे प्रेम करना है, वह मैं करता रहूंगा। तुम्हें जो करना है, वह तुम करते रहना। और देखना यह है कि प्रेम जीतता है कि घृणा जीतती है!
यह आदमी प्रेमपूर्ण है। यह आदमी प्रेयरफुल है। यह आदमी प्रार्थनापूर्ण है। ऐसे चित्त का नाम प्रार्थना है।

उदयपुर; 5 जनू, 1969; दोपहर

कहा कहूं उस देस की
छठवां प्रवचन

धर्म और क्रांति

मेरे ख्याल में, एक तो व्यक्ति के तल पर शांति की चेष्टा की जानी चाहिए। एक-एक व्यक्ति को अत्यंत शांत होने की जरूरत है। तो व्यक्ति के लिए शांति और समाज के लिए क्रांति, यह मेरी दृष्टि है। और समाज में आमूल रूपांतरण होना चाहिए। तो ये दो ही बातें मेरे ख्याल में हैं।
प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम शांत और आनंदित होने का क्या रास्ता हो सकता है--वह खबर पहुंचानी है। और समाज रूपांतरित हो--विशेषकर भारतीय समाज, क्योंकि भारत का समाज करीब-करीब मरा हुआ समाज है। और बहुत पहले हम मर चुके हैं, यानी उस मरे हुए होने को भी हमें बहुत समय हो गया। वह घटना भी नयी नहीं है, बहुत पुरानी हो गई। यह जो हम गुणगान करते रहते हैं, जैसे इकबाल ने कहा कि कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी। तो मेरी समझ यह है कि हस्ती हमारी इसीलिए नहीं मिटती कि हस्ती बहुत पहले मिट चुकी है। अब मिटने को बची भी नहीं है।
जिंदा आदमी मरता है, मरा हुआ आदमी फिर नहीं मरता है। कोई तीन हजार वर्ष से स्टेग्नेंट सोसाइटी है, जिसमें कोई डाइनैमिज्म नहीं, कोई गति नहीं, कहीं कोई बहाव नहीं। सब बिल्कुल सड़ गया। और उसकी सड़ांध हमें खाए जा रही है।
तो उसको बदलना है। एक तो प्रश्न है कि समाज नये ढंग से कैसे रूपांतरित
हो और हम भविष्य की तरफ कैसे गति करें।
हम अतीत से बंधी हुई कौम हैं। हमारी कोई भविष्योंमुख, आगे देखने वाली हमारे पास कोई आंख नहीं है। हमारी जितनी रोज-रोज की तकलीफें पैदा हो गई हैं, वे जो इमीजिएट तकलीफें मालूम होती हैं, वे वस्तुतः हमारे अतीत की ओर देखने का परिणाम हैं। क्योंकि जब तक कोई कौम अतीत की तरफ देखेगी, तब तक भविष्य और निर्माण की दिशा में कल्पना नहीं उठती।
एक तो रूस के बच्चे हैं, वे चांद पर बस्ती बसाने की सोच रहे हैं। हमारे बच्चे राम-लीला देख रहे हैं! तो चांद से लेना-देना क्या है! हम उन कल्पनाओं में हैं, जो कभी तीन हजार वर्ष पहले देखी गई थीं। और उनसे अटके हुए हैं।

यह किन कारणों से हुआ? वैल्यूज हमारी बदल गईं। हम में स्प्रिचुअल राटननेस आ गई, तो उसका क्या इकॉनामिक रीजन है? और यह डिसइंटिग्रेशन शुरू हुआ, तो हुआ ही क्यों?

पहली तो बात यह है कि यह जो राटननेस आ गई, ऐसा नहीं है। राटननेस है। एक
तो यह होता है कि हम कहीं अच्छी हालत में थे, और नीचे गिर गए, ऐसा नहीं है। हम बुरी हालत में ही रहे। तो राटननेस आ नहीं गई; राटननेस है--रही है। यानी कभी ऐसा नहीं था कि हम बेहतर हालत में थे और हम उससे नीचे उतर गए। हम बेहतर हालत में पहुंचे नहीं। और न पहुंचने के पीछे कुछ हमारे बेसिक कंसेप्शंस थे, जिनकी वजह से हम नहीं पहुंच सके।
कौम जीती है बहुत गहरे में, धारणाओं पर; वह जीने के प्रति क्या रुख लेती है, इस पर। तो भारत ने एक जीवन विरोधी रुख ले लिया है हजारों साल से। एक लाइफ निगेटिव एटिट्यूड है हमारा। जीवन को स्वीकार करने का और जीवन में आनंदित होने का और जीवन का भी कोई अहोभाव है, वह हमारी स्वीकृति नहीं है। हमारी मान्यता यह है कि जीवन से बच जाना, पलायन, एस्केप, जीवन से मुक्त हो जाना, आवागमन से मुक्त हो जाना, कहीं मोक्ष में चले जाना--यह हमारे प्राणों की पुकार रही है। यह बड़ी खतरनाक पुकार है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि अगर मुझे इस घर में रहना नहीं; यह घर बेकार है। इस घर में हूं, तो यह सिर्फ पाप का फल है, इस घर में होना। इस घर में हूं, तो यह सिर्फ किसी तरह भोग लेना है, झेल लेना है। और जितनी जल्दी मौका मिल जाए, इस घर के बाहर हो जाना है। अगर यह मेरी दृष्टि हो, तो इस घर को मैं सुंदर भी नहीं बना सकता

हूं, सजा भी नहीं सकता हूं। यह घर मेरे लिए वेटिंग रूम से ज्यादा मूल्य कभी भी नहीं ले पाएगा। यह कभी भी घर नहीं हो सकता है।
तो यह जो भारत का डिसइंटिग्रेशन दिखाई पड़ता है, व्यक्तित्व का डिटेरियोरेशन दिखाई पड़ता है, यह जो सड़ांध दिखाई पड़ती है, उसके पीछे सबसे बुनियादी मुझे यह लगता है कि हमारा पूरा का पूरा जीवन-कोण निषेध का है, निगेशन का है।

क्या सारा हिंदू एप्रोच ऐसा है?

हां, सारी भारतीय एप्रोच। मेरा मतलब जैन और बौद्ध भी उसमें पूरी तरह सम्मिलित हैं, बल्कि ज्यादा सम्मिलित हैं। यानी बजाय हिंदुओं के, जैन और बौद्धों का हाथ इस मुल्क को जीवन-विरोधी बनाने में ज्यादा है।

पर यही बात तो लागू होगी क्रिश्चिएनिटी पर भी?

बिल्कुल लागू है। लेकिन क्रिश्चिएनिटी की जड़ें उन्होंने कोई तीन सौ साल से काट डाली हैं। क्रिश्चिएनिटी आज यूरोप के मन पर प्रभावी व्यक्तित्व नहीं रखती है। यूरोप के मन पर, खासकर प्रतिभा पर, खासकर इंटेलिजेंस पर आज क्रिश्चिएनिटी की कोई पकड़ नहीं है; आम जनता पर है। तो जब तक क्रिश्चिएनिटी बहुत महत्वपूर्ण थी, तब तक यूरोप विकसित ही नहीं हुआ। वह जो, जिसको स्टेग्नेंट सोसाइटी कहें, वह टूटी भी नहीं थी। स्टेग्नेंट सोसाइटी का टूटना और क्रिश्चिएनिटी की जड़ें कटना एक ही साथ हुआ। पिछले तीन सौ वर्षों में जो भी हमें विकास दिखाई पड़ता है पश्चिम में, वह साइमलटेनियस है। इधर क्रिश्चिएनिटी का प्रभाव कम हुआ और उधर यह व्यक्तित्व का विकास शुरू हुआ। हिंदुस्तान में भी पिछले धर्मों का प्रभाव जितना कम हो जाएगा, जितना क्षीण हो जाएगा, उतनी ही तीव्रता से गति हो सकेगी। और यह बहुत ही आश्चर्य की बात है।

क्या हम पिछड़े हुए थे?

हां। जो धर्म अब तक रहे, अब उन धर्मों से काम नहीं चलेगा। धर्म की हमें
नई धारणा विकसित करनी होगी। तो यहां तक तो मैं पश्चिम से सहमत हूं कि उसने अपने पुराने धर्म से अपना संबंध तोड़ लिया। वह चर्च के बाहर आ गया, कम से कम बुद्धिमान वर्ग। और जो भी विकास किया है, वह आम जनता ने नहीं किया है, वह बुद्धिमान वर्ग का विकास है सारा का सारा। आम जनता हमेशा फायदा लेती है विकास का, या दुख भोगती है रुकावट का। आम जनता कुछ करती नहीं।
जो बुद्धिशाली वर्ग है, जो इंटेलिजेंसिया है, वह कुछ करता है। या तो
वह एक स्टेग्नेंट सोसाइटी बनाने का उपाय करता है, तो आम जनता उसका दुख भोगती है। उसने अगर शूद्र और ब्राह्मण बना दिए, तो उसको जनता शूद्र होकर भोगती रहेगी, फल को। वह अगर तोड़ देता इनको और नई दिशाएं खोज लेता, अगर वह टेक्नॉलाजी और साइंस खोज लेता, तो आम जनता उसका भोग करती। आम जनता सृजनात्मक नहीं है। आम जनता भोग करती है, जो भी बुद्धिमान वर्ग निर्मित करता है उसका। तो तीन सौ वर्षों से ईसाइयत उखड़ गई पश्चिम से; प्रतिभाशाली मन से उखड़ गई। उसकी जगह--जीवन को देखने का सुपरस्टिशंस जहां दृष्टिकोण था-- उसकी जगह साइंटिफिक दृष्टिकोण आ गया।
भारत में अभी भी जीवन को देखने का दृष्टिकोण अंधविश्वास का है, विज्ञान का अभी भी नहीं है। अब भी विज्ञान-बुद्धि नहीं है। और विज्ञान-बुद्धि हो नहीं सकती, क्योंकि हमारी पूरी शिक्षा जो है, वह दो बातों पर खड़ी है। एक तो इस बात पर खड़ी है कि विचार नहीं, विश्वास। थिंकिंग नहीं, बिलीफ। और जितना बिलीविंग माइंड होगा, उतना ही साइंटिफिक नहीं हो सकता है।
और दूसरी बात कि जब हम जीवन को असार मानते हैं, जैसा कि क्रिश्चिएनिटी
भी मानती रही है। तो जब तक क्रिश्चिएनिटी थी, तब तक साइंस जन्म नहीं ले सकी। क्योंकि साइंस तभी जन्म लेती है, जब हम जीवन को सार मानते हैं और इस

सारभूत जीवन को और सारपूर्ण बनाने में संलग्न होते हैं, तो साइंस पैदा होती है। साइंस का मतलब यह है कि इस जीवन को और भी कैसे सुंदर, और सत्य, और शक्तिशाली, सुखद कैसे बनाएं? तो वह पैदा होती है। जब जीवन को छोड़ना है, बल्कि और दुखद कैसे बनाएं, यह हमारी दृष्टि है कि अगर एक आदमी कपड़े पहने हुए है, तो वह कपड़े छोड़ कर नंगा खड़ा हो जाए; एक आदमी दो वक्त खाना खा रहा है, तो वह एक दफे खाना खाने लगे; एक आदमी को बिस्तर सोने को मिला है, तो वह जमीन पर सो जाए... !

आप यह बताएं कि हम में यह जीवन-निषेध आया कैसे?

यह सारी दुनिया में आया। हममें ही आया, ऐसा नहीं है। दुनिया के दूसरे कोनों से टूटना शुरू हो गया; हमारा टूटा नहीं। इतना फर्क है। सारी दुनिया में आने का कारण है। और वह कारण पैथालाजिकल है। वह कारण यह है कि समाज में कुछ लोग सदा ही जीवन का रस अनुभव करने में असमर्थ हो जाते हैं; नहीं कर पाते। कारण हैं--परिस्थितियां, व्यक्तित्व का ढंग, गलत जीवन को पकड़ने की कोशिश।
जीवन का जो रस भोग नहीं कर पाते, वे यह कभी स्वीकार करने को राजी नहीं होते कि हमारी कोई गलती थी, जिससे हम जीवन का रस भोग नहीं कर पाए। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति यह है कि वह दोष सदा दूसरे पर देगा। तो जो लोग भी जीवन का रस भोग नहीं कर पाते, वे कहते हैं, यह जीवन ही ऐसा है; जीवन ही दुख है; यह जीवन ही असार है।
तो इधर पांच-छह हजार वर्षों में आदमी की बहुत तरह की तकलीफें हैं, बहुत तरह की परेशानियां हैं। उन परेशानियों की तरफ दो दृष्टियां हो सकती हैं। एक तो यह कि परेशानियां बदली जा सकती हैं। हम कुछ गलत हैं, इसलिए परेशानियां पैदा हो रही हैं। दूसरी दृष्टि यह हो सकती है कि परेशानियां ही जिंदगी है। हमारे बदलने से कुछ नहीं हो सकता। सिर्फ इतना हो सकता है कि हम परेशानियों से मुक्त होने का कोई उपाय कर सकते हैं।
इस कमरे में हम बैठे हैं। इस कमरे में अंधेरा है। तो दो स्थितियां हैं। एक तो स्थिति यह है कि अंधेरा, मैं प्रकाश जलाना नहीं जानता हूं, इसलिए है। और एक स्थिति यह हो सकती है कि अंधेरा है और प्रकाश जलाया ही नहीं जा सकता, इसलिए है। ज्यादा से ज्यादा इतना कर सकता हूं कि इस कमरे के बाहर निकल जाऊं।
स्वभावतः पहला जो दृष्टिकोण जाता है मनुष्य का, पहला वह यह जाता है कि बाहर कुछ गलत है। मनुष्य की बुनियादी पकड़ पहले बाहर पर पड़ती है, भीतर पर पहीं पड़ती। तो जैसे ही प्रिमिटिव माइंड ने सबसे पहले दुनिया देखी, उसमें सब तरह की बीमारियां हैं--दुख है, मौत है, प्रियजन का बिछुड़ना है, अप्रियजन का मिलना है, गरीबी है, दीनता है, दरिद्रता है, जीवन को बचाने की सारी कठिनाई है, जीना एक लंबा श्रम और संघर्ष है--यह दिखाई पड़ा। स्वभावतः पहली जो बात दिखाई पड़ी, वह यह ख्याल में आई कि जीवन ऐसा ही है और इस जीवन से मुक्त हो जाने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है। इस जीवन को नहीं बदला जा सकता है। यह जीवन इतना बड़ा था। यह जो फर्स्ट एटिट्यूड आता है, किसी का भी दुनिया में, हमारी ही नहीं... । जब भी दुनिया में आदमी ने सोचा, तो प्रिमिटिव माइंड का जो पहला रिएक्शन था, वह यह था कि यह जगत ऐसा गलत है। इसलिए हमारे अब तक सारे धर्म जीवन को असार सिद्ध करते रहे।
इधर पांच-छह हजार वर्ष के अनुभव के बाद यह बात साफ होनी शुरू हुई कि जीवन को छोटे-मोटे रास्तों पर बदला जा सकता है। एक आदमी पैदल जाता है, वह बैलगाड़ी से जा सकता है; तकलीफ से थोड़ा बच जाता है। एक आदमी तकली चलाता है, वह चर्खा चला सकता है। और चरखे में तकलीफ कम है। तो तकली से चरखे तक पहुंचने में हमको एक अनुभव हुआ कि दुख, पीड़ा, श्रम कम किया जा सकता है। धीरे-धीरे पांच हजार वर्षों में यह अनुभव हुआ कि दुख बहुत कम किया जा सकता है, बीमारी बहुत कम की जा सकती है, उम्र बढ़ाई जा सकती है। और अब इधर सौ वर्षों में मनोविज्ञान की जो नवीनतम खोजें हैं, उनसे यह ज्ञात हुआ कि आदमी मरने में जितना दुख उठाता है, वह दुख भी, हम नहीं समझ पाए कि दुख को कैसे

बदलें, इसलिए उठाता है। अन्यथा वह भी बदला जा सकता है। तो इधर धीरे-धीरे ये धारणाएं स्पष्ट हो गईं कि जीवन दुखी है, क्योंकि जीवन को जीने की कला हम विकसित नहीं कर पाए हैं। वह हमारे हाथ में नहीं है--हो भी नहीं सकती--बिना विकसित किए हुए।
जैसे एक बच्चा पैदा होता है। एक बच्चा पैदा होता है तो जो उसकी दृष्टि होती है, जगत के प्रति, वही दृष्टि प्रिमिटिव आदमी की दृष्टि थी, जगत के प्रति। वह सब सुख चाहता है, बच्चा सब सुख चाहता है, करना कुछ भी नहीं चाहता; कर कुछ सकता भी नहीं है। और जब सुख नहीं मिलता, तो रोने और चिल्लाने के सिवाय उसके पास कोई उपाय बच नहीं रह जाता। बच्चा रोता है, क्योंकि वह कहता है, सुख मुझे मिलना चाहिए। नहीं सुख मिलता, तो कुछ करता भी नहीं; सिर्फ रोता है।
तो पुराने धर्मों ने जो जीवन को असार कहा, वह मेरे हिसाब से चाइल्डिश है। ह्युमैनिटी के रुदन का प्रतीक है, रोने का प्रतीक है। वह चिल्लाता है कि यह भी खराब है, कि वह भी खराब है; सब खराब है। और खुद कुछ कर नहीं सकता। तो यह स्वाभाविक था एक अर्थ यह होना।

ग्रीक फिलासफी जितनी रही और जितनी हमारी फिलासफी रही, तो इसमें कितना शिशु-रुदन जैसा है?

दोनों में है। लेकिन फिर भी ग्रीक फिलासफी में हमसे कम है। इसलिए पश्चिम में दूसरी तरह की धारा बह सकी। और कम होने का कुछ कारण है। सारी दुनिया में, अलग-अलग समाजों ने जो यात्रा की है, उसके भिन्न-भिन्न होने के बहुत कारण हैं। एथेंस में जो स्थिति बनी, जब ग्रीक फिलासफी पैदा हुई वहां, तो वह स्थिति बड़ी समृद्धि की और बड़े सुख की स्थिति थी। बहुत समृद्ध नगर था। उस समृद्धि के बीच जीवन के भोग के रास्ते दिखाई पड़ते थे। जीवन को छोड़ कर भाग जाने जैसा नहीं दिखाई पड़ता था; जीवन भोगने जैसा दिखाई पड़ता था। इसलिए एपिकुरस जैसे लोग यूनान में पैदा हो सके, जिन्होंने कहा, जीवन एक रस-भोग है, एक आनंद है। और जीवन से जितना हम आनंद ले सकें, उतना आनंद हम ले सकते हैं। ऐसे लोग भारत में भी कभी पैदा हुए थे--जैसे चार्वाकों की परंपरा।
मेरी दृष्टि में अगर चार्वाक भारत में प्रभावी होते, तो विज्ञान पैदा
हो जाता। लेकिन चार्वाक प्रभावी नहीं हो सके। इसलिए विज्ञान पैदा नहीं हो सका। पश्चिम में एपिकुरस और फिर पीछे फ्रांस में दिदरो और वोल्तेयर और रूसो, इन सबके प्रभाव में एक सतत धारा चली और उस सतत धारा ने जीवन भोगने योग्य है, त्यागने योग्य नहीं--यह दृष्टि पैदा कर दी।
भारत में... न तो कभी भारत इतना समृद्ध रहा इतना कि उसे जीवन भोग मालूम पड़े। अगर समृद्ध लोग थे भी, तो वह एक बहुत छोटा वर्ग था जो समृद्ध था। देश का बड़ा हिस्सा दरिद्र और दीन रहा। एक। दूसरी बात, भारत इतना दीन और दरिद्र भी नहीं रहा कि दरिद्रता असहनीय हो जाए और उसको तोड़ देने के लिए रेवल्यूशन करें। भारत एक मध्य स्थिति में रहा--एक ऐसी स्थिति में जहां कि समृद्धि इतनी नहीं है कि जीवन भोग बन जाए, और जहां दरिद्रता इतनी नहीं है कि क्रांति हो जाए। इस मध्यमवर्गीय, कुनकुनी स्थिति, ल्यूकवार्म स्थिति की वजह से न तो यहां क्रांति पैदा हुई और न जीवन के रस-भोग की धारणा पैदा हुई। तो यह जो ल्यूक वार्म स्थिति रही भारत की, उसके परिणाम में न तो जीवन भोगने जैसा लगा, और न जीवन ऐसा लगा कि उसको तोड़ दें--सहने जैसा लगा, टालरेबल लगा। और टालरेबल जो चीज लगती है, उससे हम ऊब जाते हैं। न तो जी पाते, न भोग पाते, न छोड़ पाते। उससे ऊब पैदा होगी। तो एक बोर्डम पैदा हुई भारत के मन में। और उस बोर्डम से, आउट ऑफ दैट बोर्डम, हमारे सारे रिलीजन पैदा हुए। सभी रिलीजन आउट आफ बोर्डम पैदा हुए। करीब-करीब एक जैसा दुनिया में हुआ, लेकिन दूसरे मुल्कों में वह हटना शुरू हो गया। इस मुल्क में वह हटना अभी भी शुरू नहीं हो पाया। और उसके कई कारण हैं।
एक तो कारण यह है कि भारत इन धार्मिक और जीवन की असारवादी धारणाओं के कारण और जीवन की कुनकुनी मध्यमवर्गीय स्थिति के कारण कभी भी भारत के बाहर

नहीं गया--कभी बाहर नहीं गया। ऐसा भी दुखद नहीं था कि छोड़ कर चला जाए कहीं। ऐसा सुखद भी नहीं था कि यहां रहने में आनंदित अनुभव करे। जीता रहा। तो भारत कभी भी आक्रामक नहीं हो पाया, किसी भी स्थिति में। आक्रामक न होने के कारण सारे आस-पास का इलाका भारत पर आक्रमण रहा। और वह जो आक्रमणों का परिणाम होना था, वह यह था कि जीवन के प्रति हमारा रस बढ़ने के बजाय और भी हीन हो गया और जीवन एक गुलामी, एक डिपेंडेंस, एक बांडेज--यह सब हमें मालूम होने लगी। एक बांडेज की कल्पना दुनिया में कहीं पैदा नहीं हुई, यह थोड़ा सोचने जैसा मामला है।
आदमी बंधा हुआ है, बांडेज में है, यह कल्पना भारत ने इतनी तीव्रता से विकसित की कि सब आदमी गुलाम हैं--जीवन गुलामी ही गुलामी है! यानी गुलामी जो है, वह जन्म लेना और गुलाम होना एक ही बात है। और इतनी बांडेज की जो हमने धारणा बांधी, इसलिए मोक्ष का कांसेप्ट पैदा हुआ।
दुनिया में मोक्ष का कांसेप्ट पैदा नहीं हुआ, यह भी बहुत मजे की बात है। क्रिश्चिएनिटी में मोक्ष जैसी कोई चीज नहीं है। स्वर्ग है। स्वर्ग यानी सुख की जगह। नरक है। नरक यानी दुख की जगह। हिंदुस्तान में नरक है, स्वर्ग है, और मोक्ष है। नरक दुख की जगह, स्वर्ग सुख की जगह, मोक्ष जहां दोनों नहीं हैं।
यह थोड़ा समझने जैसा मामला है। दुनिया में मोक्ष का कांसेप्ट ओरिजनली इंडियन है।

और यह कांसेप्ट ऑफ मोक्ष हायर नहीं है?

बिल्कुल हायर है। वह मैं नहीं कह रहा। बिल्कुल हायर है। लेकिन यूनिक है। और यूनिक है, हिंदुस्तान की यूनिक माइंड की वजह से है, वह जो स्थिति बनी हिंदुस्तान की। वह यहां हमने दुख भी देखा, यहां हमने सुख भी देखा और दोनों ऐसे कुनकुनी हालत में देखे कि दोनों में से कोई भी हमें पकड़ने जैसा नहीं लगा। दुख को तो कोई पकड़ता नहीं, सुख को पकड़ने जैसा नहीं लगा। अगर हमने सुख बहुत गहराई में देखा होता, अनुभव किया होता तो हम स्वर्ग की कल्पना पर टिकते, जहां बहुत परिपूर्ण सुख है।

क्या उनके थिंकिंग कंडीशन को क्रैडिट देंगे?

थिंकिंग केपेसिटी को तो क्रैडिट देनी ही पड़ेगी। प्योरली नहीं है। प्योरली कभी कोई कांसेप्ट कंडीशंस से नहीं होता। प्योरली नहीं है। लेकिन अगर ये कंडीशंस न होतीं, तो थिंकिंग दूसरे रास्ते पर जाती, इस रास्ते पर नहीं जाती। इस रास्ते पर जाना कंडीशंस की वजह से है। कांसेप्ट कंडीशंस की वजह से नहीं पैदा हो जाता है, लेकिन थिंकिंग को पर्टिकुलर चैनल में जाना कंडीशंस की वजह से होता है, जब एक दफा मुल्क दुख-दारिद्र्य, दीनता, दरिद्रता, दासता, इसमें फंसा रहा, फंसा रहा, तो हमने एक बांडेज का कांसेप्ट विकसित किया, जो कि अगर फ्रीडम होती, तो हम कांसेप्ट विकसित नहीं कर पाते। अगर फ्रीडम--पूरी फ्रीडम होती, तो हम कांसेप्ट विकसित नहीं कर पाते। बांडेज का कांसेप्ट फ्रीडम में विकसित नहीं होता। और जिस दिन दुनिया टोटली फ्री होगी, उस दिन बांडेज का कांसेप्ट एकदम ढीला पड़ जाएगा। तो बांडेज ने--सब तरह के बांडेज ने, उसमें आर्थिक बांडेज है, और तरह के बांडेज हैं, उस सबने एक ऐसी हालत पैदा कर दी हमारे दिमाग में कि मुक्त होना है किसी तरह, यह भाव तीव्रता पकड़ने लगा। और इस तरफ माइंड को जाने की सुविधा हो गई। सिचुएशन जो थी, उसने डाइरेक्शन दिया माइंड को।
माइंड हमारे पास है। माइंड दुनिया में जितना किसी के पास है, उतना हमारे पास है। लेकिन पर्टिकुलर डाइरेक्शन में जाने की जो बात है, वह कंडीशंस पैदा करती हैं। एथेंस का माइंड दूसरी डाइरेक्शन में गया। यूरोप का माइंड भिन्न दिशा पकड़ा। हमारा माइंड भिन्न पकड़ा। चीन ने भिन्न दिशा पकड़ी। वह हम क्या, किस हालत में थे, वहां से दिमाग को रास्ता मिलना शुरू हुआ।

कहां तक आपका एक्झिस्टेंशलिज्म, फ्रेंच एक्झिस्टेंशलिज्म से मिलता- जुलता है?

बहुत थोड़ी दूर तक, बहुत थोड़ी दूर तक। बस, इतनी दूर तक जो उनका विश्लेषण है, जीवन की धारणाओं का कि एंग्विश या बोर्डम, संताप है, दुख है, ऊब है; इनकी वजह से आदमी, इनको भुलाने के लिए, इनके प्रति कंसोलेशन लाने के लिए, इनके विपरीत धारणाएं पैदा करता है। इससे मैं राजी हूं। लेकिन इससे आगे मेरा जाना होता है। मेरा मानना है कि ये सारी की सारी बातें इसीलिए पैदा होती हैं--बोर्डम या एंग्विश--क्योंकि हम वस्तुतः एक्झिस्टेंस क्या है, उसको अनुभव नहीं कर पाते, इसलिए पैदा होती हैं। एक्झिस्टेंसियलिस्ट का कहना है एक्झिस्टेंस इ.ज सच, कि बोर्डम पैदा होगी, एंग्विश पैदा होगी। एक्झिस्टेंस का नेचर ऐसा है कि यह होने वाला है। आदमी में एंग्जायटी पैदा होगी।
तो मेरा कहना यह है कि एंग्जाइटी और बोर्डम यह सब पैदा होती हैं, क्योंकि वी नाट नो ाट एग्झिस्टेंस इज। वह हमें पता नहीं चल पाता कि क्या है एक्झिस्टेंस। जिस दिन हमें एक्झिस्टेंस का पता चल जाए, उस दिन आनंद पैदा होगा, ब्लिस पैदा होगी, शांति पैदा होगी। यह जो मेरा फर्क है। तो मैं, एक्झिस्टेंस को ही मैं गॉड कहता हूं। एक्झिस्टेंस ही परमात्मा है।

क्या एक्झिस्टेंस नोएबल है?

बिल्कुल। नोएबल का मतलब एक्सपीरिएंसेबल। नोएबल का मतलब यह कि अनुभव किया जा सकता है, क्योंकि हम एक्झिस्टेंस के हिस्से हैं। मैं एक्झिस्टेंस हूं। आप एक्झिस्टेंस हैं। नोएबल इस अर्थो में नहीं कि मैं उसे बाहर से देख कर जान सकूंगा। इट कैन नॉट बी नोन ऑब्जेक्टिवली। जैसे मैं आपको जान रहा हूं। कुर्सी को जान रहा हूं, दीवाल को जान रहा हूं, वैसा एग्जिस्टेंस नहीं जाना जा सकता। मैं एक्झिस्टेंस का हिस्सा हूं। मैं एक्झिस्टेंस हूं। तो जितना मैं अपने इनरमोस्ट प्राणों में प्रवेश करूं, उतना ही मुझे एक्झिस्टेंस का पता लगेगा। तो एक्झिस्टेंस इ.ज ए सब्जेक्टिव नोइंग, सब्जेक्टिव नोइंग। और इसीलिए मैं मेडिटेशन पर जोर देता हूं। क्योंकि मेडिटेशन का मेरे लिए एक ही मतलब है कि कितने गहरे मैं स्वयं में उतर जाऊं, सब्जेक्टिविटी में कितना गहरा उतर जाऊं। वहां मुझे एक्झिस्टेंस का राज, जो सीक्रेट और मिस्ट्री है, वह अनुभव होगी। वह जो अनुभव है, उसी को मैं रिलीजस एक्सपीरिएंस कहता हूं। वह जो अनुभव है, उसको हम प्रेम में ईश्वर का अनुभव कहें, कुछ नाम लें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

क्या कोई पर्सनल गॉड जैसी चीज है?

इम्फेटिकली, देयर इ.ज नो पर्सनल गॉड। गॉड मीन्स इम्पर्सनेलिटी। वह तो ठीक है, वह तो इम्पर्सनल होगा; तो डिफाइनेबल मुश्किल हो जाएगा। यह भी ठीक है। लेकिन फर्क जो मैं करूंगा वह जो उसे निराकार या इम्पर्सनल वेदांत कहना चाहता है, वह इस अर्थ में कहना चाहता है कि यह जो आकार है, यह मिथ्या है, इलूजरी है। यह जो जहां-जहां आकार दिखाई पड़ रहा है, वह इलूजरी है। मेरे लिए आकार इलूजरी नहीं है। मेरे लिए जगत इलूजरी नहीं है, माया नहीं है। झूठा नहीं है। वह एपीयरेंस नहीं है। वह भी है, उसका भी पूरा एक्झिस्टेंस है, इसलिए वह भी मेरे लिए परमात्मा है। लेकिन उसको जानने के दो रास्ते हैं। यह जो सब तरफ जगत है मेरे, यह जो एक्झिस्टेंस मुझे घेरे हुए है, इसे मैं दो तरह से जान सकता हूं। एक तो आब्जेक्टिवली--अपनी आंख से, अपने हाथ से--बाहर मेरे जो जगत है; उसको मैं जान सकता हूं। तो आब्जेक्टिवली कभी भी बहुत गहरा जानना नहीं हो सकता है, इट इ.ज नोइंग अबाउट, उसके आस-पास घूम कर मैं जान सकता हूं। आपके पास आऊं, तो आपको मैं देखूंगा, छुऊंगा, आपकी बात

सुनूंगा, लेकिन आपके बाहर-बाहर घूम जाऊंगा। तो मैं कुछ भी जान कर आऊंगा, इट विल नॉट बी नोइंग यू, बट अबाउट यू।
तो एक रास्ता है अस्तित्व को बाहर से जानने का। इससे जो हम जान पाते हैं, वह हम केवल अबाउट जान पाते हैं, कभी उसका इनमोस्ट नहीं जान पाते। तो यह जो हमारा जानना है, यह अधूरा है। यह कभी पूर्ण नहीं हो सकता। इस जानने में हमारी इंद्रियों का और सारी चीजों का हाथ है। उनकी भूलें और कमियां और फैलिसी सम्मिलित होंगी। यह जो रास्ता है आब्जेक्टिवली जानने का, इसी को मैं साइंटिफिक रास्ता कहता हूं कि इसमें हम कितना इलुजन काट सकें और कितना परफेक्शन ला सकें। इस आब्जेक्टिव जानने को, आब्जेक्टिव जानने की वैज्ञानिक विधि ही विज्ञान है, वही साइंस है। तो जिनका माइंड जगत को बाहर से देख कर जानना चाहता है, वे साइंटिफिक माइंड के लोग हैं। जिनका मन जगत को बाहर से घूम कर नहीं, बल्कि स्वयं के भीतर जहां अस्तित्व से जोड़ है हमारा, वहां रूट्स में उतर कर जानना चाहता है, उनको मैं रिलीजस माइंड कहता हूं। और दो ही तरह की नोइंग है जगत में, एक साइंटिफिक नोइंग, और एक रिलीजस नोइंग। तो रिलीजस नोइंग सब्जेक्टिव है, साइंटिफिक नोइंग ऑब्जेक्टिव है। वह जो शंकर या वेदांत की जो धारणा है, वह बाहर के जगत को ही इनकार कर देते हैं। उसके इनकार करने के कारण भी भारत में साइंस पैदा नहीं हो पाई। क्योंकि जब बाहर जगत है ही नहीं, तो उसे जानने का और साइंटिफिक जानने का सवाल कहां है? तो हिंदुस्तान में साइंस को पैदा न होने देने में जितना शंकराचार्य का हाथ है, उतना और किसी आदमी का नहीं है। शंकराचार्य का जितना हाथ है हिंदुस्तान में साइंस पैदा न होने देने में, उतना किसी आदमी का नहीं। क्योंकि एपीयरेंस को जानने की जरूरत क्या है! वह है ही नहीं। और फिर उसको साइंटिफिक जानने का सवाल ही नहीं है, क्योंकि जो ट्रू ही नहीं है, उसका कोई सवाल नहीं रह जाता।

वह जो दो, वेज ऑफ नोइंग--दो रास्ते हैं जानने के, इसमें इ.ज देअर ग्रेडेशन ऑफ सुपीरिआरिटी ऑर इनफीरिआरिटी? ऑर बोथ आर इक्वली पोटेंट?

इक्वली पोटेंट--इक्वली पोटेंट। फर्क जो है, दोनों के जो एम रिजल्ट हैं, वे अलग हैं। इक्वली पोटेंट--इक्वली नेसेसरी; लेकिन एण्ड रिजल्ट अलग हैं। हम बाहर को कितना ही जानते चले जाएं, तो हमारी शक्ति बढ़ती जाएगी, शांति नहीं। भीतर को हम जितना जानेंगे, उतनी शांति बढ़ेगी, शक्ति नहीं।

जिसे आप रिलीजस एक्सपीरिएंस कहते हैं, बाई दिस अल्टिमेटली वॉट दि एंड रिजल्ट इ.ज?

जिसको हम बिलीफ कहें... ! क्योंकि अभी जो हम नहीं जानते स्वयं को, जैसा मैंने कहा, एक्झिस्टेंस को नहीं जानते, इसलिए बोर्डम है, इसलिए ऐंग्विश है, इसलिए दुख है, इसलिए पीड़ा है, चिंता है, परेशानी है। इसलिए हम एक पागलपन की हालत में दिन-रात घूमते रहते हैं। यह जो हालत है, यह हालत मिट जाएगी। दुख दूर हो जाएगा, जिसको कहें।

साइकिक और स्प्रिचुअल अनुभव में क्या फर्क है?

इन दोनों में फर्क है। यह बात हो सकती है कि जिसको हम शांति और आनंद समझ रहे हैं, वह साइकिक स्टेट भी हो सकती है, और साइकिक स्टेट नहीं भी हो सकती है; स्प्रिचुअल रियलाइजेशन भी हो सकता है, और इसमें डिस्टिंक्शन कर लेना जरूरी है। अगर हम अपने माइंड को एक खास अनुभव के लिए कल्टिवेट करते हैं और कंडीशन करते हैं--जैसे एक आदमी है, बैठ कर यह भाव करता है कि मैं आनंदित हूं, मैं आनंदित हूं, मैं आनंदित हूं--मैं तो आनंद ही आनंद हूं, मैं तो सच्चिदानंद हूं, ऐसा अगर करता है, तो जो परिणाम होगा, वह साइकिक स्टेट होगी। क्योंकि उसने अपने साइक को कंडीशन किया, ऑटो-हिप्नोटाइज किया। अपने को समझाने की कोशिश की कि मैं यह हूं, मैं यह हूं। और माइंड को इस बात के

लिए कम्पेल किया कि माइंड यह अनुभव करे कि मैं यह हूं। यह स्थिति साइकिक होगी।
इसलिए जो पुराना धर्म है उसमें से सौ में से नब्बे संतों की स्थिति साइकिक है, ज्यादा नहीं। इसको मैं साइकिक कहूंगा, लेकिन रिलीजस नहीं कहूंगा। न स्प्रिचुअल कहूंगा। क्योंकि यह जो है, यह कंडीशन रिफ्लेक्स है। स्प्रिचुअल किसको कहूंगा मैं? स्प्रिचुअल मैं कहूंगा अनकंडीशनिंग को। एक आदमी यह नहीं सोचता कि मैं आनंद हूं, न वह यह सोचता कि मैं परमात्मा हूं, न वह यह सोचता कि मैं ब्रह्म स्वरूप हूं। वह यह कुछ भी नहीं सोचता। ही जस्ट गोज इन टु नो वॉट इ.ज। कुछ सोचता नहीं। कोई धारणा नहीं बनाता, कोई कंसेप्शन नहीं लेता, सिर्फ खोज में जाता है भीतर कि मैं क्या हूं। कोई प्रि-कंडीशनिंग नहीं करता माइंड में कि वहां क्या होगा। एक अननोन को जानने जाता है कि वहां क्या है। इसको जानने में वह भीतर प्रवेश करता है और भीतर प्रवेश का जो रास्ता है, वह ध्यान है, मेडिटेशन है, अवेयरनेस है। वह अपने पूरे माइंड के प्रति अवेयर होता है कि क्या हूं--माइंड के एक-एक चीजों के प्रति, क्रोध के प्रति, प्रेम के प्रति, घृणा के प्रति, दुख के प्रति, चिंता के प्रति, वह एक अवेयरनेस साधता है, आब्जर्वेशन साधता है कि यह क्या है? क्या है? यह क्या है? मैं कौन हूं? इसकी खोज करता है। जैसे-जैसे इस खोज में वह जाता है वैसे-वैसे वह हैरान होता है कि जितनी यह खोज गहरी होती है, जितनी आंतरिक होती है, उतना दुख क्षीण होने लगता है, उतना क्रोध क्षीण होने लगता है, उतनी अशांति क्षीण होने लगती है। यह वह पाता है। यह उसने कभी सोचा नहीं, यह उसने कभी तय नहीं किया। इसको उसने कभी चाहा नहीं, इसे वह पाता है।
और जिस दिन वह परफेक्टली साइलेंट होता है, जहां कि कुछ भी नहीं रह जाता, टोटल वैक्यूम रह जाता है, आखिरी इनरमोस्ट सब्जेक्टिविटी में, जहां कि परिपूर्ण शून्य रह जाता है, और कुछ भी नहीं रह जाता, वहां वह पहली दफा अनुभव करता है कि ब्लिस क्या है। इसे उसने मांगा नहीं, पूछा नहीं, चाहा नहीं, खोजा नहीं। लेकिन एक क्षण में जब परिपूर्ण मन शांत होता है, तो जैसे कोई चीज भीतर फूट पड़ती है, उसका एक्सप्लोजन हो जाता है।
उस एक्सप्लोजन में वह जानता है। यह जो जानना है, यह जानना साइकिक नहीं है। क्यों नहीं है साइकिक? क्योंकि साइकिक जाना हुआ जो है, वह बार-बार खोता रहेगा, यह कभी खोएगा नहीं। यह कभी नहीं खोएगा।
दूसरी बात, साइकिक को रोज-रोज साधना पड़ेगा तभी उसको आप साध पाएंगे। अगर पंद्रह दिन आपने नहीं साधा, तो वह विलीन हो जाएगा। क्योंकि वह तो आपका कल्टीवेशन था। लेकिन अब यह आपके साथ होगा--सोते-जागते, उठते-बैठते जीवन में सब कुछ बदल जाए, लेकिन इस पर कोई बदलाहट नहीं आएगी।

किसका अनुभव जानना प्रामाणिक होगा, आथेंटिक होगा?

आपका अपना। दूसरे का आथेंटिक है या नहीं, यह आप फिर साइंटिफकली ही जान सकते हैं, फिर वह रिलीजस जानना नहीं होगा। यानी मेरा कहना यह है कि साइंटिफिक आथेंटिकेशन के लिए हम रिलीजन के पास नहीं जाते। साइंटिफिक वैलिडिटी के लिए हम लेबोरेटरी में जाते हैं। अब यह जो रिलीजन का अनुभव है, यह अनुभव साइंटिफिक वैलिडिटी का अनुभव नहीं होगा। मेरा मतलब आप समझे न! क्योंकि वे दोनों रिल्म, आयाम अलग हैं, और दोनों रिल्म के जो क्राइटेरिअन हैं, वे अलग हैं। इसलिए इसको दूसरे में कितना ऑथेंटिक है, यह आप नहीं जान सकते। अपने में कितना ऑथेंटिक है, यह जान सकते हैं। हां, दूसरे में इतना ही आप जान सकते हैं, जैसा कि कुछ बाहरी लक्षण हो सकते हैं जानने के। तो दूसरे में कुछ बातें दिखाई पड़ सकती हैं। वह आदमी सुख-दुख में समान मालूम पड़ सकता है। लेकिन वे अनुमान होंगे।

वे यही कहते हैं कि यह तो गूंगे का गुड़ है!

वे तो ठीक कहते हैं, बिल्कुल ही ठीक कहते हैं। यह तो बिल्कुल ही ठीक कहते हैं कि गूंगे का गुड़ है। यह तो बिल्कुल ठीक कहते हैं। गलती वहां हो जाती है, क्योंकि गूंगे को गुड़ बाहर से लाना पड़ता है, मेरा मतलब समझे न? यह गुड़ भी नहीं है, यह गूंगे का अनुभव है। उसमें होता क्या है, वह जो बाहर से आता है, वह साइकिक ही होगा, उसके ज्यादा नहीं हो सकता। बाहर से भी स्टेट इनफ्यूज की जा सकती है।

मान लिया कि आपने तो गुड़ से नहीं किया और आपका जेनयुन एक्सपीरिएंस है,
तो उसकी वैलिडिटी--जब हम फिर उसी टर्म्स में कह रहे हैं... ।

टर्म्स का मामला यह है--सच बात यह है कि जो पुरानी टर्म्स हैं, वे कहती कुछ नहीं हैं। वे सिर्फ इनकार कर रही हैं कहने से। अगर पाजिटिव टर्म्स हो-- जैसे गूंगे का गुड़ हमने कहा, तो असल में हम यह कह रहे हैं कि नहीं कहा जा सकता। हम कुछ कह नहीं रहे हैं। उस अनुभव के बाबत अब तक जो भी कहा गया है, वह सब निगेटिव है। असल में निगेटिव ही हो सकता है क्योंकि पाजिटिव जब भी होगा, वह ऑजेक्ट के बाबत होगा। यानी इनहैरेंटली वह निगेटिव होगा, क्योंकि जब भी हम कुछ कहेंगे और पाजिटिव कहेंगे, तो वह आब्जेक्टिव हो जाएगा।

वे भी तो यही कहते हैं कि भई, यह तो अनुभव की चीज है।

ठीक कहते हैं, बिल्कुल ठीक कहते हैं। इस मामले में मैं उनसे सहमत हूं।
वे बिल्कुल ठीक कहते हैं। जिनको भी वह अनुभव हुआ है, वे यही कहेंगे। लेकिन जिनको अनुभव नहीं हुआ है, वे भी यह कह सकते हैं। इसलिए मैं कह रहा हूं, इसकी आथेंटिसिटी का जहां तक सवाल है, यह स्वयं के समक्ष हो सकती है, दूसरे के समक्ष नहीं हो सकती है।

क्या चार्लटन, झूठा दावेदार हमेशा रहेगा या कि वह अभी मिट जाएगा?

रहेगा। मिट कैसे सकता है? बहुत कम हो सकता है, बहुत ज्यादा हो सकता है। बिल्कुल नहीं मिट सकता। कम ज्यादा हो सकता है। आज तक वह बहुत ज्यादा रहा है, क्योंकि जिसको हमने रिलीजन डिफाइन किया था, उसमें पासिबिलिटी बहुत थीं। लेकिन दूसरी बात यह है, चार्लटन का फील्ड एकदम समाप्त भी हो सकता है, वह तभी--जैसे मेरी धारणा जो है, मेरी धारणा यह है कि यह बिल्कुल टोटली इंडिविजुअल एक्सपीरिएंस है। जब मैं यह कहता हूं कि टोटली इंडीविजुअल एक्सपीरिएंस है, तो मैं यह कहता हूं कि रिलीजस आर्गनाइजेशन की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि जब इंडिविजुअल एक्सपीरिएंस है, तो आर्गनाइजेशन बिल्कुल ही गलत बात है। चार्लटन जिंदा रह सका, क्योंकि आर्गनाइजेशन थे। आर्गनाइजेशन के बिना चार्लटन जिंदा नहीं रह सकता। पुरोहित की कोई जरूरत नहीं है, पुजारी की कोई जरूरत नहीं है। चार्लटन जिंदा रह सका, क्योंकि पुजारी और पुरोहित की जरूरत थी। गुरुडम की कोई जरूरत नहीं है। गुरु की कोई जरूरत नहीं है। चार्लटन जिंदा रह सका, क्योंकि गुरु की जरूरत है। तो हम उधर से खत्म कर सकते हैं, चार्लटन को। लेकिन फिर भी एक संभावना यह है कि एक आदमी यह कह सकता है कि मुझे अनुभव हुआ है, आप मानें या न मानें! लेकिन वह आपके साथ चार्लटन होकर करेगा क्या! अगर मैं किसी का गुरु नहीं हूं, मंदिर का पुजारी नहीं हूं, और कोई भगवान नहीं हूं, कोई तीर्थंकर-पैगंबर नहीं हूं और मैं यह कहता हूं कि मुझे ज्योतिषी अनुभव हुआ है परमात्मा का। आप कहते हैं--हम मानते हैं या हम नहीं मानते। बात खत्म। इससे ज्यादा कुछ मामला नहीं है।
दुनिया से, धर्म से, पाखंड तभी खत्म होगा, जब हम धर्म को व्यक्तिगत अनुभव का तीव्रतम प्रभाव दे देंगे। जब तक हम संगठन में हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई यह चलाएंगे, तब तक चालर्टन खत्म नहीं होगा। क्योंकि मजा यह है न, आज भी, आज भी जैन का मुनि हिंदू को थोड़े ही मुनि मालूम पड़ता है! न मुसलमान का फकीर जैन को मुनि मालूम पड़ता है, वह तो उसकी अपनी धारणा में जो फिट

बैठता है, वह मुनि मालूम पड़ता है। एक आदमी पट्टी बांधे हुए है मुंह पर, तो पट्टी बांधने वाले को लगता है कि यह आध्यात्मिक हो गया।
लेकिन मैं तो सारे चिह्न छीन लेना चाहता हूं। न पट्टी की कोई जरूरत है, न आध्यात्मिक आदमी को कोई खास वस्त्रों की जरूरत है, न गेरुए वस्त्रों की जरूरत है। आध्यात्मिक आदमी को बाहर से पहचानने का कोई उपाय नहीं छोड़ना चाहता। रह जाएगा इसलिए। फिर आखिर में मामला उसका अपना रह जाता है निजी, कि वह समझता है कि मुझे हुआ, कोई तो अपने को धोखा दे रहा होगा; आपको तो धोखा दे नहीं सकता।
और चार्लटन तभी तक चलता है, जब तक दूसरे को धोखा देना चलता है। नहीं तो क्या प्रयोजन है? अगर मुझे उससे कुछ मिलने वाला है नहीं तो मैं किसलिए परेशान हो जाऊंगा? तो जितना इंडिविजुअल रिलीजन बनेगा दुनिया में, उतना धोखा-धड़ी और पाखंड मिटेगा; वह मिट सकता है। लेकिन एक पासिबिलिटी बाकी है कि एक आदमी कह सकता हैः मुझे ईश्वर मिला और उसको नहीं मिला हो। लेकिन इससे क्या बनता बिगड़ता है किसी का!
और इसलिए मैं आर्गनाइजेशन के अत्यंत विरोध में हूं--रिलीजस आर्गनाइजेशन के। और सब तरह के आर्गनाइजेशन हो सकते हैं, रिलीजस आर्गनाइजेशन नहीं होना चाहिए। और दुनिया से जितनी जल्दी हिंदू, मुसलमान और सेक्ट्स की यह जो आर्गनाइजेशन की स्थिति है टूट जाए, उतनी आदमियत ज्यादा रिलीजस हो सकेगी। यानी इस शरारत की वजह से वह चालर्टन जो है, बहुत फायदा उठा रहा है, और अकारण फायदा उठा रहा है, जिसका कोई मतलब नहीं है। अभी मैं जबलपुर था। एक दिगंबर मुनि हैं, जैन दिगंबर... । अब वे दूसरों
को सिर्फ एक पागल आदमी मालूम पड़ते हैं, कि नंगे चले जा रहे हैं सड़क पर, लेकिन दिगंबर को लगते हैं कि वे भगवान हैं। बीच रास्ते पर खड़े होकर, हजारों आदमियों के सामने उन्होंने बाल उखाड़े, केश लुंच करते हैं। जैन दिगंबर काटता नहीं बाल, हाथ से उखाड़ता है। अब दूसरों को लग रहा है कि पैथालाजिकल है यह मामला। यह क्या पागलपन है! और इसको इतना शोरगुल और बैंड-बाजा बजा कर करने की क्या जरूरत है? आपको अपनी हजामत जैसी भी करनी हो आप करिए, लेकिन बीच रास्ते पर खड़े होकर और दस हजार लोगों को इकट्ठा करके बाल उखाड़ने का... ! दूसरे समझ रहे हैं कि यह सब शरारत, बेवकूफी की बातें हैं, लेकिन जैन स्त्रियां आह भर रही हैं कि अरे, अरे इतना त्याग! अब यह जो मामला है न, जब तक हम इसको एक सोशल घटना बनाए हुए हैं, तब तक जो आदमी बाल उखाड़ सकता है, जो आदमी नंगा खड़ा हो सकता है, वह आथेंटिक हो गया। और करना क्या है। और जांचने का उपाय क्या है। इससे भीतर क्या हुआ है?
मैं इतने साधुओं से मिला हूं, मैं इतना हैरान हुआ हूं कि हमारा साधु हमारे आम आदमी से भी साधारण है। उतना भी इंटेलिजेंस नहीं है उसके पास। और सौ में से नब्बे परसेंट साधु तो इडियट की हालत में हैं। बल्कि सच बात है कि वह इडियट है, इसलिए साधु बनने में उसको आसानी पड़ गई है, नहीं तो बन नहीं सकता।
एक बुद्धिमान आदमी को कोई कहे कि तुम बाल उखाड़ो सड़क पर खड़े होकर, तो वह पच्चीस दफे सोचेगा, लेकिन इडियट कुछ नहीं सोचेगा। वह कहेगा, ठीक है। अगर इससे मुनि बनता है, तो वह उखाड़ देगा बाल एक बुद्धिमान आदमी सोचेगा कि उसको कितना खाना जरूरी है कि एक महीने भर वह उपवास कर सकता है? सवाल नहीं है। यह जो हमने अभी स्थिति बना दी है, क्योंकि हमने बाहर से मापने के साधन बना दिए और सोशल फिनामिना बना दिया। बहुत धोखाधड़ी खड़ी हो गई है, लेकिन धोखाधड़ी टूट सकती है।

आपका मिशन यह शुरू हुआ, तो दिस वा.ज इन दि शेप ऑफ रिबेलियन आर इट वा.ज आउट ऑफ कनविक्शन?

आउट ऑफ कनविक्शन। और आउट ऑफ कनविक्शन में बिलीफ आना शुरू हुआ। मुझे कुछ चीजें सोचने, विचारने, प्रयोग करने, अनुभव करने से दिखाई पड़नी शुरू हुईं और मुझे लगा कि ये चीजें इतनी जरूरी हैं कि मुझे किसी को कह देना चाहिए। हो सकता है उसके काम आ जाएं। वह मैंने कहना शुरू कर दिया। और तब जो

मैं कह रहा था, वह कांफ्लिक्ट में आ गया उसके, जो कि कहा गया है। और रिबेलियन जैसा मालूम होने लगा।
रिबेलियन में मुझे रस नहीं है, तोड़-फोड़ में मुझे रस नहीं है। लेकिन तोड़-फोड़ के बिना कोई रास्ता ही नहीं है। क्योंकि जो मुझे दिखाई पड़ता है, वह उससे भिन्न है और उसके प्रतिकूल है। वह टूटे, तो ही इसको गति मिल सकती है, नहीं तो गति नहीं मिल सकती। अगर मुझे लगता है कि धर्म वैयक्तिक है, तो फिर मुझे चोट करनी पड़ेगी कि यह जो संगठन है, धर्म है, मंदिर है, मस्जिद है, कल्ट है, चर्च है, यह गलत है।

तो इस प्रकार गलत कहने से लोग क्या नाराज नहीं होंगे?

नाराज तो वे बहुत हैं मुझ पर। नाराज तो भारी हैं। लेकिन नाराजगी उनकी इम्पोटेंट साबित हो रही है। क्योंकि लोग, जिनसे मैं बात कर रहा हूं, वे मुझसे सहमत होते हुए मालूम पड़ रहे हैं।
अभी वेदांत सम्मेलन था एक अमृतसर में। कोई बीस हजार लोग सम्मेलन में थे। कोई सौ संन्यासी इकट्ठे थे। जब मैंने ये सारी बातें कहीं, तो वहां एक विवाद बन गया, तीन दिन। तो वे सारे संन्यासी मेरे खिलाफ बोल रहे हैं। मैं अकेला हूं, क्योंकि मुश्किल है किसी का मेरे साथ खड़ा होना। लेकिन अंतिम दिन मैंने लोगों से कहा कि मुझे पता होना चाहिए कि परिणाम क्या हुआ? मेरी बात आपकी समझ में पड़ी या नहीं? तो मैं हाथ उठवाना चाहता हूं, ताकि इन संन्यासियों को पता चले कि उनकी बात कितनी समझी गई, मेरी कितनी समझी गई! तो बीस हजार हाथ उठे। मुश्किल से दस-पांच हाथ होंगे, जो नहीं उठे। तो मुझे लोक-मानस तक तो बात पहुंचानी है। तो लोक-मानस और धर्म के बीच में जो एजेंटों का जाल है, उसका तो न्यस्त स्वार्थ है। मुझे ऐसा लगता है, उसको भी मेरी बात तो समझ में पड़ती है। क्योंकि जब अकेले में वह मुझसे मिलता है, तो वह इनकार नहीं करता। लेकिन जब वह बाजार में मुझे मिलता है, तो वह इनकार करता हुआ मालूम पड़ता है। वह जब मुझे सुनता है, तब राजी मालूम होता है। घर लौटते से वह इनकार में पड़ जाता है। क्योंकि उसका न्यस्त स्वार्थ भी है। धर्म जो है अकेली धार्मिक बात नहीं रह गई है। धर्म के साथ इकॉनामिक और सारे मामले जुड़े हुए हैं।
अब एक ब्राह्मणों का वर्ग है पूरा का पूरा, संन्यासियों का वर्ग है पूरा का पूरा। अब इस संन्यासी को अगर यह बात ठीक भी समझ में पड़ जाए कि धर्म वैयक्तिक है, तो भी यह समाज में जीता है--यह संन्यासी। इसका भोजन-कपड़ा सब समाज पर है। अगर धर्म वैयक्तिक है, तो तुम उठो यहां से, भागो! तुम्हें यहां खड़े रहने की जगह नहीं रह गई। तो अब इसके दूसरे स्वार्थ भी हैं।
तो यह तो मुझे समझ में आता है कि सत्य तो हमेशा समझ में आ सकता है, अगर उसमें कोई सचाई है। और किसी आथेंटिक एक्सपीरिएंस से वह आया है, तो समझाया जा सकता है। लेकिन वेस्टेड इनट्रेस्ट हैं, वे तकलीफ देते हैं, वे बाधा डालते हैं। वे बाधा हमेशा डालेंगे। और इसलिए रिबेलियन की शक्ल हो जाती है, अन्यथा रिबेलियन की कोई जरूरत भी नहीं है।
अब वे क्या कोशिश करेंगे? यह कि मेरा गांव में आना ही न हो पाए, मैं बोल ही न सकूं। सभा के लिए हाल न मिले। यह न हो... । वे ये सारी कोशिश करेंगे। और इसका परिणाम? इसका परिणाम, इसकी वजह से रिएक्शन खड़ा होना शुरू हो जाता है वहां। और जो लोग मेरे पास आते हैं, वे फिर वे लोग आ पाते हैं सबसे पहले मेरे पास, जिनका रिबेलियस माइंड है। दूसरा आदमी मेरे पास नहीं आ पाता। तो वे खड़ी कर रहे हैं तरकीब, जिससे कि वह एक रिबेलियन का रुख ले लें, अन्यथा मेरे लिए रिबेलियन का कोई सवाल नहीं है। यानी मेरे मन में शांति की जगह है, क्रांति की कोई जगह नहीं है। लेकिन शांति आ नहीं सकती। वह जो चारों तरफ, जो जोर बना हुआ है... । इसलिए क्रांति की बात करनी एकदम जरूरी हो गई। उसे तोड़े बिना कोई रास्ता नहीं है।

बंबई और अन्य जगहों में आपको सुनने के लिए किस-किस वर्ग के लोग आते हैं?

इसमें कई तरह के लोग हैं। बड़ा वर्ग तो उन लोगों का है जिनके पास संपत्ति की सुविधा है, और संपत्ति की सुविधा के कारण जिन्हें परेशान होने की, बेचैन होने की सुविधा है। बड़ा वर्ग तो उनका है। दूसरा वर्ग उनका है जिनको कोई मानसिक तकलीफ है, या कोई दूसरी परेशानी है, जिसको हल करने के लिए वे ध्यान और मेडिटेशन, उसमें उत्सुक होना चाहते हैं। तीसरा वर्ग उन लोगों का है जो जीवन के प्रति सोचते, विचारते हैं और जानना चाहते हैं कि क्या सोचा जा सकता है जीवन के बाबत? जिनके मन में अतीत के प्रति अब कोई लगाव नहीं रह गया है, और भविष्य जिन्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। पुराने मूल्य जिनके गिर चुके हैं और नये मूल्य बन नहीं रहे हैं। वे टटोल रहे हैं। एक वर्ग उनका है। खासकर युवकों का, युवतियों का वर्ग उनका है, जिनको पुराने की कोई पकड़ नहीं है और नये की कोई समझ नहीं है। और उनको एक बेचैनी है कि वे कहां खड़े होंगे! एक उनका वर्ग है। इस तरह के सारे वर्ग हैं।
लेकिन धीरे-धीरे जब वे मुझे सुनते हैं, तो उनका यह भेद धीरे-धीरे गिरता चला जाता है। जितना मुझे सुनते हैं, उतना यह भेद गिरता चला जाता है। और तब एक नया ही वर्ग इन सबके बीच से पैदा हो जाता है, चाहे वह किसी कारण से मेरे पास आया हो। उसका फर्क आने में था। आ जाने के बाद मेरे निकट फर्क गिरता चला जाता है धीरे-धीरे, फिर जीवन की खोज और जीवन में, जीवन के सत्य को जानने की एक आकांक्षा ही अंत में उसके साथ रह जाती है। तो आने वाला वर्ग है, और मेरे पास ठहर जाने वाला वर्ग है। जो आता है, वह तो इतने कारणों से आता है। लेकिन जो ठहर जाता है, उसका फिर एक ही कारण रह जाता है कि सत्य को जानने की, जीवन को जानने की उसकी आकांक्षा प्रबल हो जाती है। वह मेरे पास रुक जाता है।

बहुत से लोग आपको ही आदर्श मान कर आपकी प्रतिमा खड़ी कर सकते हैं, और खड़ी भी कर रहे हैं। इस बारे में आपका क्या कहना है?

हां, यह होता है, यह हो सकता है। उसका मुझे ध्यान है। उसका मुझे ध्यान है। इतने से कोई हल नहीं है, न कोई प्रयोजन है। इसलिए मैं अपने प्रति आइडियल न बने, इसके लिए सतत सचेष्ट हूं और सब तरह से उसे तोड़ने की कोशिश भी करता हूं। यानी मैं जिस ढंग का जीवन जी रहा हूं, उस जीवन में मैं बहुत सुविधा से, एकदम परमात्मा और तीर्थंकर बन सकता हूं--थोड़ी होशियारी से, थोड़ी व्यवस्था से। लेकिन मैं जान कर नासमझी करता हूं और जगह-जगह से ऐसा खड़ा होने की कोशिश करता हूं, जैसे मैं एक साधारण आदमी हूं। और वह चेष्टा है ताकि मेरी प्रतिमा न बन पाए। मेरी प्रतिमा बनाने की कोई जरूरत नहीं है। मैं जो कह रहा हूं, अगर वही आपके विवेक को उचित लगे, तो ही स्वीकृत हो। मैं स्वीकृत न हो जाऊं। यानी ऐसा न हो जाए कि मैं स्वीकृत हूं, इसलिए जो मैं कहता हूं, वह ठीक है। उससे तो मैं पूरे वक्त सचेत हूं, उसको तोड़ने की कोशिश करता हूं।
अब मैं नंगा भी खड़ा हो सकता हूं, लंगोटी भी लगा सकता हूं। वही उचित होगा, अगर प्रतिमा खड़ी करनी है। उचित होगा कि मैं पैदल चलूं; वही उचित होगा। वह आसान भी है, स्वास्थ्यपूर्ण भी है, स्वास्थ्यवर्धक भी; सब तरह से अच्छा भी है। लेकिन वैसा मैं नहीं चलूंगा। अच्छा होगा कि मैं एक ही बार खाना खाऊं। अच्छा होगा कि मैं झोपड़ो में ठहरूं। अच्छा होगा कि मैं आपको पास न आने दूं; दूर एक फासला बना कर रखूं। वह मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। मोस्ट आर्डिनरी मैन की तरह कैसे जीना, उसकी सारी चेष्टा कर रहा हूं--एक बिल्कुल सामान्य आदमी की तरह, ताकि मेरी वजह से मेरी कोई बात आपको स्वीकार न हो। अगर बात स्वीकार हो, तो बात की वजह से स्वीकार हो। मैं तो एक मोस्ट आर्डिनरी आदमी हूं। मुझसे कुछ बल नहीं है मेरी बात को।
मेरी तरफ से जो चेष्टा है, मेरी तरफ से जो चेष्टा है--मेरी तरफ से चेष्टा यह है कि मैं एक साधारण-जन हूं, एक साधारण-जन की तरह मुझे जीना है। ताकि मैं असाधारण आपको दिखाई न पडूं। और मेरे असाधारण दिखाई पड़ने की वजह से मेरा विचार आपको कीमती न मालूम पड़े। अगर किसी दिन मैं आपको असाधारण

दिखाई भी पडूं, तो मेरे कारण नहीं, मेरे विचार के कारण। अगर किसी दिन आपको दिखाई भी पडूं, तो वह जो मेरा विचार है, उसके कारण। तो हीरो वर्शिप का तो मैं दुश्मन हूं; उसको खड़ा नहीं होने देना चाहता, क्योंकि अंततः कल्ट उसी के पास खड़ा होता है। आर्गनाइजेशन उसी के पास खड़ा होता है।
तो हीरो न बन सकूं, उसकी सारी चेष्टा मेरी है। लेकिन मेरी चेष्टा अकेली पर्याप्त नहीं है। दूसरे फिर भी बना सकते हैं। आदमी का माइंड इतनी कंडीशन से भरा हुआ है कि वह किसी भी तरह के आदमी को हीरो बना सकता है। वह महावीर को हीरो बना सकता है, वह कृष्ण को भी हीरो बना सकता है। कृष्ण, जो कि औरतों से घिरा है! वह इसलिए हीरो बना लेगा कि इतनी औरतों से घिरा जो आदमी है, वह जरूर परम ब्रह्मचारी होना चाहिए। वह महावीर को हीरो बना लेगा कि वह स्त्रियों को छोड़ कर भाग गया है। नग्न सड़क पर खड़ा हो गया है। जिसने स्त्रियों का बिल्कुल त्याग कर दिया है, वह परम ज्ञानी है! आदमी तो बिल्कुल विरोधों के बीच भी बना सकता है। वह तो यहां तक बना सकता है कि वह किसी आदमी को इसलिए एक्स्ट्रा आर्डिनरी कह सकता है कि वह इतना आर्डिनरी है, इसीलिए। वह तो आदमी की कठिनाई है।
-टाइम्स ऑफ इंडिया के प्रतिनिधि के साथ वार्ता, बंबई, 4 दिसंबर, 1968